www.antrashabdshakti.com
संपादक : डॉ. प्रीति सममित सुराना
वारासिवनी (म.प्र.)

अन्तरा शब्दशक्ति

www.antrashabdshakti.com
प्रकाशन एवं उद्देशीय संस्था

साहित्यिक वेब अंक
1 से 30 अप्रैल 2026
(मासिक साझा संकलन)

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का अंतरराष्ट्रीय मंच।

उड़ान अन्तरा शब्द शक्ति की

प्रिय पाठकों,
सादर नमस्कार।

''जब शब्द केवल कागज तक सीमित न रहें, बल्कि दुनिया के हर कोने तक पहुँचने लगों वहीं से एक नई उड़ान शुरू होती है''

इसी भावना के साथ दिनांक 1 अप्रैल 2026 को अन्तरा शब्दशक्ति के साहित्यिक वेब पृष्ठ की शुरुआत हुई, जिसका विधिवत लोकार्पण 10 अप्रैल 2026 को आयोजित कार्यक्रम " उड़ान-अन्तरा शब्दशक्ति की..."में सम्पन्न हुआ॥

इस गरिमामयी अवसर पर साहित्य अकादमी के निदेशक डश्व. विकास दवे जी, वरिष्ठ साहित्यकार आ. मुकेश दुबे जी, पूर्व मंत्रे आ. प्रदीप जायसवाल जी, तथा संस्था के संरक्षक डश्व. भारती सुराना ्व्रस्त्रे रोग विशेषज्ञत्र्ञ एवं श्री गुलाबचंद जी देशलहरा की प्रेरणादायी उपस्थिति रही॥

इस पहल की सबसे उल्लेखनीय उपलब्धि – सिर्फ 30 दिनों में 90 अलग-अलग रचनाकारों की रचनाओं को इस मंच पर स्थान मिला, और एक के अलावा किसी भी रचनाकार की पुनरावृत्ति नहीं हुई॥ यह केवल संख्या नहीं, बल्कि साहित्यिक विविधता और सृजनात्मक विश्वास का सशक्त प्रमाण है॥

अन्तरा शब्दशक्ति का मूल उद्देश्य -

- डायरी के निजी भावों को विश्व पटल तक पहुँचाना,
- हिन्दी को जन-जन के हृदय में स्थापित करना,
- और डिजिटल युग में साहित्य को सहज, सुलभ और जीवंत बनाना है॥

यह केवल एक मंच नहीं,
यह उन शब्दों की उड़ान है,
जो दिल से निकलकर दुनिया तक पहुँचना चाहते हैं।

आप सभी का स्नेह, सहयोग और आशीर्वाद
इस यात्र को निरंतर ऊर्जा देता रहे॥

सादर,
संस्थापक एवं संपादक
अन्तरा शब्दशक्ति
डॉ. प्रीति समकित सुराना
वारासिवनी (म.प्र.) – 481331

1 अप्रैल से 30 अप्रैल तक प्रकाशित अंकों में रचनाकारों की सूची -

1 अप्रैल के अंक में समाचार • साहित्य संस्था संगम। • बाल साहित्य समागम, गली बचपन की। • साहित्यिक पत्रिका संपादकों का समागम। • सभी में अन्तरा शब्दशक्ति की सहभागिता।	**2 अप्रैल के अंक में** 1. साधना छिरोल्या, दमोह 2. विभा श्रीवास्तव, पटना 3. रामा तेकाम, बालाघाट 4. इंदु पराशर	**3 अप्रैल के अंक में** 5. उर्मिला माधव 6. प्रमिला सक्सेना 7. करण जैन, दुर्ग 8. डॉ मीनाक्षी दुबे	**3 अप्रैल के अंक में** 9. प्रेम सिंह श्शकाव्याष, दुर्ग 10. सोनम लड़ीवाला 11. डॉ प्रीति समकित सुराना, वारासिवनी 12. अदिति रूसिया, वारासिवनी	**5 अप्रैल के अंक में** 13. मुकेश दुबे, सीहोर 14. मेघा राठी, भोपाल 15. तनुजा नंदिता, लखनऊ 16. लीना शर्मा, कोटा 17. निरुपमा त्रिवेदी, इंदौर 18. डॉ.भारती वर्मा बौड़ाई, देहरादून
6 अप्रैल के अंक में 19. नमिता राकेश	**7 अप्रैल के अंक में** 20. स्मृति गुप्ता, जबलपुर 21. प्रेरणा पुरोहित मंत्री, जयपुर 22. शेखर अस्तित्व मुंबई 23. कीर्ति प्रदीप वर्मा, माखननगर	**8 अप्रैल के अंक में** 24. मनोज जैन, भोपाल 25. पंकज जुगनू 26. किशोर छिपेश्वर 27. पिंकी परुथी	**9 अप्रैल के अंक में** 28. राकेश श्रीवास्तव 29. भाऊ राव महंत, बालाघाट 30. हेमंत बोर्डिया, इंदौर 31. राहुल आर्यन	**10 अप्रैल के अंक में** 32. प्रज्ञा जायसवाल नागपुर 33. सीमा हरीशर्मा, भोपाल 34. सीता गुप्ता दुर्ग
11 अप्रैल के अंक में समाचार • उड़ान की घोषणा • वेबसाइट का पुनर्लोकर्पण • 22 पुस्तकों का विमोचन • 1 अप्रैल से प्रारंभ वेब साहित्य पेज का लोकार्पण	**12 अप्रैल के अंक में समाचार** • 18 सम्मानों की घोषणा • स्मृतियों एवं उपलब्धियों के पल • भारती दीदी द्वारा प्रीति को शुभकामना • प्रकाशित 22 पुस्तकों के कवर।	**13 अप्रैल के अंक में** 35. मुश्ताक अहमद 36. गोपेश दशोरा, उदयपुर 37. प्रो.विलास गायकवाड़, लातूर 38. एडवोकेट सुषमा अग्रवाल, नागपुर	**14 अप्रैल के अंक में** 39. विशाखा सिंघल 40. संजय अश्क, बालाघाट 41. दीप्ति अग्रवाल 42. श्वेता राजेश सोनकर, वारासिवनी 43. अरविना गहलोत 44. रागिनी स्वर्णकार, इंदौर	**15 अप्रैल के अंक में** 45. एल पी शर्मा ष्लक्ष्यष 46. जगदीश पंकज 47. रामकिशन शर्मा
16 अप्रैल के अंक में 48. मुकेश कुमार सिन्हा, दिल्ली 49. ऋतु कोचर कटंगी 50. राधा गोयल, दिल्ली	**17 अप्रैल के अंक में** 51. पूजा गुप्ता, मीरजापुर 52. मुक्ति भंडारी 'ममता' पारा, झबुआ॥ 53. लालित प्रसाद जोशी, छत्रशंभाजीनगर 54. दिव्या सिंह सिसोदिया	**18 अप्रैल के अंक में** 55. शिखरचंद जैन 'कोलकाता' 56. ब्रह्मदेव बंधु 57. डॉ संगीता बिंदल, पुणे	**19 अप्रैल के अंक में** 58. लालित्य ललित दिल्ली	**20 अप्रैल के अंक में** 59. जीनस कंवर 60. अलका चौधरी 'अनमोल' बालाघाट 61. स्वरा, लखनऊ 62. सपना परिहार
21 अप्रैल के अंक में 63. धर्मपल महेंद्र जैन, टोरंटो (कनाडा) 64. विंध्यकुमार मिश्र	**22 अप्रैल के अंक में** 65. नीना सिन्हा 66. श्वेता राय 67. आनंद पांडेय केवल 68. रश्मि अभ्या	**23 अप्रैल के अंक में** 69. मीनाक्षी सुकुमारन 70. श्याम कौशिक 71. नीता सक्सेना, नागपुर 72. पूनम कटीरियार, पटना	**24 अप्रैल के अंक में** 73. स्मृति गुप्ता 74. अपेक्षा व्यास 75. राजेश रेड्डी	**25 अप्रैल के अंक में** 76. मुकेश ष्असीमितष
26 अप्रैल के अंक में 79. डॉ भावना चोपड़ा आरोही 80. नमिता दुबे मिशा	**27 अप्रैल के अंक में** 77. अविनाश बहोर 78. चंद्रप्रभा सूद	**28 अप्रैल के अंक में** 81. नील मणि, मेरठ 82. प्रदीप कुमार अरोड़ा पुणे 83. डॉ.मधु प्रधान, कानपुर	**29 अप्रैल के अंक में** 84. विजयानंद विजय नई दिल्ली 85. नलिन खोईवाल, इंदौर 86. मनीष कुमार पाटीदार महेश्वर 87. अटल कश्यम, भोपाल	**30 अप्रैल के अंक में** 88. कृष्ण कुमार निर्माण, करनाल 89. वर्षा श्रीवास्तव 90. दिलीप आचार्य सोमेश्वर बांसवाड़ा

90
अलग-अलग रचनाकार

सिर्फ 30 दिनों 90 रचनाकारों की रचनाएँ प्रकाशित
एक के अलावा किसी भी रचनाकार की पुनरावृत्ति नहीं

धन्यवाद सभी रचनाकारों का
जो इस उड़ान का हिस्सा बनें...

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
प्रकाशन एवं बहुउद्देशीय संस्था

वेब अंक
बुधवार , 1 अप्रैल 2026

"वर्ष 2026 में मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद एवं संस्कृति विभाग द्वारा आयोजित साहित्यिक आयोजनों में 'अन्तरा शब्दशक्ति प्रकाशन एवं बहुउद्देशीय संस्था' की सक्रिय एवं उल्लेखनीय सहभागिता रही।"

तीन राष्ट्रीय साहित्यिक आयोजनों में सशक्त उपस्थिति

अन्तरा शब्दशक्ति ने मध्यप्रदेश के साहित्यिक विमर्श में दर्ज कराई सक्रिय भागीदारी जबलपुर/भोपाल/इंदौर।

मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद एवं संस्कृति विभाग द्वारा वर्ष 2026 के प्रारंभिक महीनों में आयोजित तीन महत्वपूर्ण साहित्यिक आयोजनों में अन्तरा शब्दशक्ति प्रकाशन एवं बहुउद्देशीय संस्था की सक्रिय और उल्लेखनीय सहभागिता रही। संस्था की संस्थापक, साहित्यकार तथा पत्रिका एवं वेबसाइट की संपादक डॉ. प्रीति समकित सुराना ने संस्था का प्रतिनिधित्व करते हुए इन तीनों आयोजनों में भाग लिया और विभिन्न सत्रों में साहित्य, संपादन और रचनात्मक संवाद से जुड़े विषयों पर सहभागिता दर्ज कराई। ये तीनों आयोजन–

* साहित्य संस्था संगम (20-21 फरवरी, जबलपुर)
* 'गली बचपन की' बाल साहित्यकार सम्मेलन (13-14 मार्च, भोपाल)
* 'वीणा की वाणी' संपादक सम्मेलन (30-31 मार्च, इंदौर)

समकालीन हिंदी साहित्य के विविध आयामों पर गंभीर विमर्श के महत्वपूर्ण मंच सिद्ध हुए। साहित्य संस्था संगम : जबलपुर में संस्थाओं का रचनात्मक समागम 20-21 फरवरी 2026 को जबलपुर स्थित श्री जानकी रमण महाविद्यालय में आयोजित "साहित्य संस्था संगम" में प्रदेश की साहित्यिक संस्थाओं के संगठन, संचालन, नवाचार तथा तकनीकी प्रबंधन जैसे विषयों पर गंभीर चर्चा हुई।

मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी के निदेशक डॉ. विकास दवे के मार्गदर्शन में आयोजित इस कार्यक्रम का संयोजन डॉ. अभिजात कृष्ण त्रिपाठी ने किया। उद्घाटन सत्र का विषय "वर्तमान साहित्यिक परिदृश्य और हमारी भूमिका" था, जिसमें बदलते पाठक वर्ग, डिजिटल माध्यमों और साहित्यिक संस्थाओं की भूमिका पर विचार व्यक्त किए गए। वहीं समापन सत्र "भारत की ज्ञानधारा और हमारी दृष्टि" विषय पर केंद्रित रहा।

आयोजन में आचार्य भगवत दुबे, डॉ. हरिशंकर दुबे, डॉ. मोहन तिवारी आनंद, राजेन्द्र गट्टानी, राज सागरी, अभिमन्यु जैन, डॉ. आनंद सिंह राणा, सुरेश मिश्र विचित्र सहित अनेक साहित्यकारों की उपस्थिति रही।

इस अवसर पर अन्तरा शब्दशक्ति की ओर से अध्यक्ष डॉ. प्रीति समकित सुराना एवं महासचिव कीर्ति वर्मा ने सहभागिता की। परिचय सत्र में संस्था की गतिविधियों और डिजिटल विस्तार का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया। कार्यक्रम के दौरान अन्तरा शब्दशक्ति द्वारा डॉ. विकास दवे को शॉल, स्मृति-चिन्ह और संस्था की परिचय पुस्तिका भेंट कर सम्मानित किया गया।

गली बचपन की : बाल साहित्य पर राष्ट्रीय मंथन 13-14 मार्च 2026 को भोपाल में आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी "गली बचपन की" बाल साहित्य के विविध आयामों पर केंद्रित रही। यह संगोष्ठी बाल साहित्य के पुरोधा कीर्तिशेष कृष्ण कुमार अष्ठाना की स्मृति को समर्पित थी। देश के विभिन्न राज्यों से आए बाल साहित्यकारों, संपादकों और शोधार्थियों की उपस्थिति में आयोजित इस कार्यक्रम में कुल तेरह सत्र आयोजित हुए। इन सत्रों में बाल साहित्य की रचनात्मकता, आलोचना, शोध और अनुवाद की संभावनाओं पर विस्तृत चर्चा हुई। एक सत्र में डॉ. प्रीति समकित सुराना ने "बाल साहित्य की वैश्विक पहचान और अनुवाद की संभावनाएँ" विषय पर अपने विचार प्रस्तुत किए। कार्यक्रम में मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी के निदेशक डॉ. विकास दवे, 'देवपुत्र' पत्रिका के संपादक गोपाल महेश्वरी, तथा बाल साहित्य शोध सृजन पीठ की निदेशक डॉ. मीनू मिश्रा पांडे सहित अनेक साहित्यकारों की सक्रिय उपस्थिति रही।

संगोष्ठी के अंतर्गत आयोजित विषय-मुक्त कवि सम्मेलन ने पूरे आयोजन को रचनात्मक ऊर्जा और साहित्यिक उल्लास से भर दिया।

"वीणा की वाणी" : संपादकों का राष्ट्रीय संवाद 30-31 मार्च 2026 को इंदौर स्थित देवी अहिल्या विश्वविद्यालय में आयोजित "वीणा की वाणी" सम्मेलन में देशभर की साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं के संपादकों और पत्रकारों ने सहभागिता की। उद्घाटन सत्र में मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी के निदेशक डॉ. विकास दवे ने कहा कि साहित्यिक पत्रिकाओं को प्रतिस्पर्धा की दौड़ से निकालकर एक परिवार के रूप में विकसित करना इस सम्मेलन का उद्देश्य है।

'वीणा' पत्रिका के संपादक राकेश शर्मा ने हिंदी पत्रकारिता की दो शताब्दियों की गौरवशाली परंपरा का उल्लेख करते हुए कहा कि साहित्यिक पत्रिकाएँ साहित्यिक इतिहास की महत्वपूर्ण धरोहर हैं। सम्मेलन के विभिन्न सत्रों में पत्रिकाओं के संपादन, डिजाइन, तकनीकी चुनौतियों, सामग्री की गुणवत्ता तथा प्रसार संख्या जैसे मुद्दों पर गहन चर्चा हुई। इस अवसर पर डॉ. प्रीति समकित सुराना ने मंच से अन्तरा शब्दशक्ति प्रकाशन एवं ई-पत्रिका की गतिविधियों और उद्देश्यों का परिचय दिया तथा साहित्यिक पत्रिकाओं के माध्यम से रचनात्मक संवाद को सशक्त बनाने की आवश्यकता पर बल दिया।

📌 विशेष टिप्पणी
"साहित्यिक संवाद ही साहित्य की ऊर्जा है। संस्थाओं, रचनाकारों और संपादकों के बीच संवाद जितना व्यापक होगा, साहित्य का भविष्य उतना ही सशक्त होगा।"
— डॉ. प्रीति समकित सुराना

अन्तरा शब्दशक्ति प्रकाशन एवं बहुउद्देशीय संस्था साहित्य, संस्कृति और रचनात्मक संवाद को समर्पित एक सक्रिय साहित्यिक मंच है।
संस्था के माध्यम से—
* साहित्यिक गोष्ठियाँ * प्रकाशन गतिविधियाँ,
* डिजिटल साहित्य मंच * रचनाकारों का मार्गदर्शन
जैसी विविध गतिविधियाँ संचालित की जाती हैं। संस्था की संस्थापक डॉ. प्रीति समकित सुराना के नेतृत्व में अन्तरा शब्दशक्ति निरंतर साहित्यिक संवाद और सृजनात्मक ऊर्जा को प्रोत्साहित कर रही है।

जबलपुर में आयोजित साहित्य संस्था संगम में सहभागिता करते साहित्यकार। भोपाल में आयोजित 'गली बचपन की' संगोष्ठी के दौरान वक्तव्य देतीं डॉ. प्रीति मकित सुराना। इंदौर में आयोजित 'वीणा की वाणी' सम्मेलन में देशभर के संपादक और साहित्यकार। ✍ डॉ. प्रीति समकित सुराना

www.antrashabdshakti.com
संपादक : डॉ. प्रीति समकित सुराना
वारासिवनी (म.प्र.)

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
प्रकाशन एवं बहुद्देशीय संस्था

वेब अंक
गुरुवार , 2 अप्रैल 2026

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का अंतरराष्ट्रीय मंच।

होलिका दहन

आओ होलिका दहन करें,
संग साथ ये काम करें,
काम क्रोध मद लोभ की,
भावना का भी दहन करें।।

ईर्ष्या,द्वेष,डाह,लालच का,
दामन भी हम छोड़ चलें,
ईश कृपा पाने की खातिर,
धर्म कर्म के कार्य करें।।

रंग अबीर गुलाल उड़ाकर,
प्रेम भाव को प्रकट करें,
द्वेष और दुश्मनी खत्म कर,
प्रेम भाव में मगन रहें।।

होलिका दहन करके फिर,
बड़ों का आशीष लें,
छोटों को आशीष देकर,
ऊंची सोच सदा रखें।।

साधना छिरोल्या
(दमोह, मध्य प्रदेश)

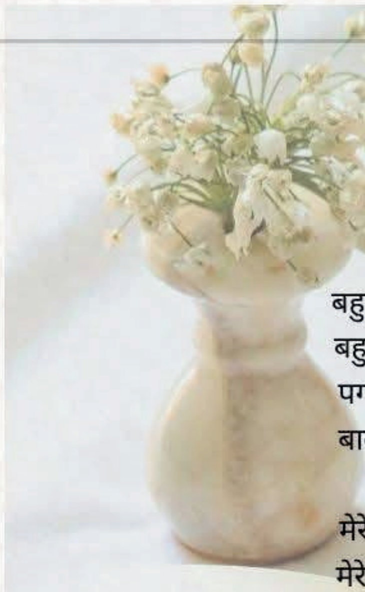

- पग - पग-

बहुत कुछ आप पर छूट गया ,
बहुत कुछ काश पर छूट गया ,
पग – पग पर तेरी यादें दोस्त ,
बाकी बचा सब कुछ टूट गया।

मेरे पास बीते पल की यादें हैं ,
मेरे पास तेरी ही मीठी बातें हैं ,
हर पल तुम मेरी सांसों में हो ,
मेरे पास यही सुनहरी यादें है।

तेरे लिए दुआ करूंगी खुश रहें ,
तू जो भी चाहें वो सब तुझे मिलें ,
तू खुश तो " रमा "भी खुश दोस्त ,
ना रखना कोई अब शिकवे गिले।

रमा " प्रेम - शांति "
प्रकृति - प्रेमी

निराले ढंग

केवल अभिनय करते हैं सब,
सबके अपने ढंग निराले।
मुखमंडल पर दिव्य भाव हैं,
लेकिन सबके मन परनाले।

अपनेपन का नाम नहीं है,
ईर्ष्या अपनों बीच पल रही।
अपनों की ही प्रगति देखकर,
सब की छाती यहाँ जल रही।

मन में नेह भरा था पहले,
देख खुशी से हृदय छलकता।
अतिथि द्वारा पर आ जाए तो,
हर एक व्यक्ति को आज
खटकता।

स्वार्थ भरी संकीर्ण सोच ही,
अब सबके मन में बसती है।
त्याग प्रेम ममता उदारता,
सिमट गई इनकी हस्ती है।

मीठी बातें, हँसी-ठिठोली,
सब रीलों की भेंट चढ़ गए।
मन की गिरह खुलें अब कैसे?
हाय-हेलो कह सभी बढ़ गए।

सिर्फ औपचारिकता बाकी,
खुला हृदय अब कहाँ बचा है?
यंत्र-मानवों की बस्ती है,
नहीं कहीं पर प्यार बचा है।

अंधी दौड़ लालसाओं की,
नहीं कहीं पर अंत लिखा है।
जीवन मृग मरीचिका सा है,
जल का बस आभास दिखा है ।

पीछे कौन छूटता जाता,
नहीं किसी को ध्यान किसी का।
और छोड़ जो चला गया है,
लगता था वह नहीं किसी का।

मोबाइल की इस दुनिया में,
सारे रिश्ते मूव कर गए।
पतझड़ के मौसम में जैसे,
सारे पत्ते स्वयं झड़ गए।

इंदु पाराशर

मिट्टियों पर रीझा दिल

विश्वविद्यालय के सभागार में चर्चा चल रही थी- विषय था "प्रवासी भारतीय और उनकी निष्ठा"। श्रोताओं के बीच बैठे लोग गम्भीर थे, जैसे हर शब्द किसी पुराने घाव को कुरेद रहा हो। "फ़र्ज़ कीजिए, कभी ऐसा समय आए कि अमेरिका और भारत के रिश्ते बिगड़ जाएँ और अमेरिका भारत पर मिसाइल हमले करने लगे। तब अमेरिका में बसे भारतीय क्या चाहेंगे—अमेरिका की जीत और भारत की हार?" मंच से एक युवक ने सवाल उछाला। सभागार में खामोशी वापस लौटी लहरें सी उतर आई। "क्रिकेट की तरह क्या वे वहाँ के नमक का हक़ अदा करेंगे? भले ही कोई मिसाइल उस गाँव पर गिरे जहाँ उनके अपने घरवाले रहते हों?" युवक ने आगे कहा। पतझड़ में गिरे आखरी पत्ते सा सवाल हवा में तैरता रह गया। कुछ लोग असहज होकर कुर्सियाँ खिसकाने लगे। "बढ़ती आबादी और घटती छत की त्रासदी को झेल पलायन करते युवा का उत्तर कोई नहीं देना चाहे तो कोई बात नहीं-," तभी पीछे की पंक्ति से एक अधेड़ स्त्री उठीं। उसके चेहरे पर थकान नज़र आ रही थी, "उत्तर क्यों नहीं देना चाहेंगे?" उन्होंने स्थिर आवाज़ में कहा। सभागार का ध्यान उनकी ओर मुड़ गया।

"मेरा बेटा अमेरिका में रहता है। कई बार उसकी कुछ बातों से मुझे लगा कि वह अपनी जड़ों को भूल रहा है। मैं तो कई मंचों से उस पर देशद्रोह का आरोप लगाने की माँग तक कर चुकी हूँ।" उन्होंने धीमे-धीमे कहना शुरू किया लोग चौंक गए। "लेकिन..." उन्होंने हल्की मुस्कान के साथ जोड़ा -"अमेरिका में जितने भारतीयों से मिली हूँ, वे भारत में रहने वाले बिहारी, बंगाली, राजस्थानी से ज़्यादा सिर्फ भारतीय लगे- कई बार तो उनसे बहुत ज़्यादा।" सभागार में सन्नाटा अमावस्या सा गहरा गया। "वे वहाँ की मिट्टी में रहते हैं, पर उनकी धड़कनें अभी भी यहाँ की धूल से जुड़ी रहती हैं। वे भारत की हार कभी नहीं चाहेंगे।" थोड़ा रुककर उन्होंने युवक की ओर देखा-"और जहाँ तक क्रिकेट की बात है... वह खेल है। खेलों में तो एक ही देश के दो दल भी होते हैं-अभ्यास के लिए, सीखने के लिए। वहाँ जीत-हार से दिल नहीं टूटते।" उनकी आवाज़ हल्की काँप रही थी। "पर युद्ध... युद्ध में तो दिल ही टूटते हैं। और जिनके दिल दो मिट्टियों के बीच धड़कते हों, वे किसी की हार नहीं- बस अपनों की सलामती चाहते हैं।" सभागार में सुई/पिन भी गिरती तो लाउडस्पीकर पर शोर गूँज जाता।

— विभा रानी श्रीवास्तव, पटना

www.antrashabdshakti.com
संपादक : डॉ. प्रीति समकित सुराना
वारासिवनी (म.प्र.)

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
प्रकाशन एवं बहुद्देशीय संस्था

वेब अंक
शुक्रवार , 3 अप्रैल 2026

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का अंतरराष्ट्रीय मंच।

कविता

कुछ अनकही बातें ,
कुछ मन छुई यादें ,
कुछ भूले हुए गीत ,
कुछ लड़कपन की प्रीत I

कुछ सावन की फुहार,
कुछ मन का गुबार,
कुछ अश्कों की भाषा,
कुछ मन की अभिलाषा I

कुछ सपनों की डोर,
कुछ बातों का छोर,
कुछ बीते हुए पल,
कुछ मन की हलचल I

कुछ खोने की टीस,
कुछ पाने की आशा,
कुछ शब्दों के ढेर,
बने कविता की भाषा I

प्रमिला सक्सेना
ब्यावरा राजगढ़
म. प्र.

ग़ज़ल

लहज़ा लहज़ा वक़्त बदलता रहता है,
ऐसे रब का काम भी चलता रहता है,

कोई भी हम वादा करलें दुनिया से,
उसकी मर्ज़ी है सब टलता रहता है,

कोई फ़ैसला करने का हक़दार नहीं,
इंसाँ बस हाथों को मलता रहता है,

अपनी सीधी राह भटकने वाले सुन,
ग़म नाहक ही दिल में पलता रहता है,

सारे जलवे महज़ ख़ुदा के नाम हैं सब,
उल्फ़त का उन्वान बदलता रहता है..

उर्मिला माधव,
दिल्ली

अन्तरा शब्दशक्ति

कविता

खाली कागज़ लेकर बैठा हूँ,
समझ नहीं आ रहा क्या लिखूँ?
अपने दर्द लिखूँ या अपनी जीत?
इस ज़माने के बारे में लिखूँ या
इस दुनिया की रीत?

अपनी थकान की वजह लिखूँ या फिर उन सुकून के पलों का राज़?
अपनी हार का डर लिखूँ या जीत से होने वाला सुनहरा एहसास?

अपनी ज़िंदगी इन पन्नों पर सजाना चाहता हूँ, पर कहाँ से शुरुआत करूँ?
इन खाली कागज़ों को किस कलम से भरूँ,

जिसे बिना लिखे तुम सब समझ जाओ,
मेरी आँखों में देखकर हर शब्द का अर्थ बताओ।

तुम्हारा हर अर्थ हमें मंज़ूर है, पर अफ़सोस,
तू इन कागज़ों की पहुँच से कोसों दूर है...।

करण जैन,
दुर्ग, छत्तीसगढ़

स्वरचित गीत

प्रीत के नीर से आचमन कर लिया l
यूँ लगा जैसे हरि का भजन कर लिया ll

आस का नर्म अंकुर बड़ा हो गया ,
जैसे बालक पगों पर खड़ा हो गया ,
बन धरा तुमको अपना गगन कर लिया l
यूँ लगा जैसे हरि का भजन कर लिया ll

भाग्य था कुछ प्रबल तुम मुझे मिल गए ,
पंक में जैसे अनगिन कमल खिल गए ,
सूखे उपवन को जैसे चमन कर लिया l
यूँ लगा जैसे हरि का भजन कर लिया ll

सामने तुम रहो देखती ही रहूँ
हों अधर मौन मन बांचती ही रहूँ
बाँच कर वेद जैसे मनन कर लिया l
यूँ लगा जैसे हरि का भजन कर लिया ll

जिंदगी न्यून से कुछ अधिक हो गई ,
जब तुम्हारी डगर की पथिक हो गई ,
चार धामों का जैसे भ्रमण कर लिया l
यूँ लगा जैसे हरि का भजन कर लिया l l

डॉ. मीनाक्षी
दुबे, भोपाल

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का अंतरराष्ट्रीय मंच।

जन्मोत्सव

जिंदगी काव्य संकलन।
लिख लो एक ही नाम।।
जीवन पथ सबका सरल हो।
विघ्न-बाधाओं से रहित हो।।
कल की खुशियां आज मिले।
सौहार्द प्रेम सुंदर फूल खिले।।
अमन-शांति मन मस्तिष्क रहे।
भाईचारे साथ जीवन पथ बढ़े।।
मानवता के सब बने पुजारी।
सकारात्मक परिणाम हितकारी।।
संस्कार,संस्कृति संबल सबका।
जीवन पथ प्रशस्त हो जन का।।
अनाधिकार चेष्टा दुष्परिणाम।
निरीह विध्वंसकारी का काम।।
जियो और जीने दो ही है महावीर।।
मानव कब तक रहोगे अधीर।।
संदल सुरभित जीवन पथ हो।
जीवन है अप्रतिम जी लो।।

– प्रेम सिंह "काव्या"
छत्तीसगढ़
स्वरचित/मौलिक

भावों के पंख लगाकर शब्द उड़ान भरते हैं...

कैसे होती है काव्य की रचना?
शब्दों के ढेर को,
काव्य नहीं कहा जाता?
भाव के बिना शब्द कुछ नहीं कहते,
भावों के पंख लगाकर शब्द उड़ान भरते हैं
एक दिल से दूसरे दिल पर गमन करते हैं।
जितने दिल पर दस्तक,
उतनी ऊंची सफलता।
सफलता दिलाता है, भावों का वेग,
शब्दों संग मिलकर तीर बन जाते है
जो भेद जाए तीर वो दिल लोगो का,
वो काव्य फिर इतिहास रच जाते है।

सोनम
लड़ीवाला

बस इतना-सा सच

मुझे तुम्हारी फुरसत का साथी नहीं बनना,
मैं चाहती हूँ...
कभी यूँ ही, बिना वजह
तुम्हारे ख़यालों में उतर जाऊँ।

मैं वो नाम नहीं
जो खाली समय की सूची में लिखा जाए,
मैं वो एहसास बनना चाहती हूँ-
जो व्यस्तताओं के बीच भी तुम्हारे होंठों पर
एक शांत मुस्कान बन जाए।

प्रतीक्षा मुझे स्वीकार है,
पर उपेक्षा नहीं।
मैं साथ निभाना जानती हूँ,
पर स्वयं से दूर होना नहीं जानती।

यदि आओ,
तो यूँ आना...
जैसे मन थककर
अपने ही घर लौट आता है
बिना शर्त- बिना संकोच।

क्योंकि प्रेम वहीं सच्चा होता है,
जहाँ किसी के लिए
फुरसत नहीं निकाली जाती,
मन स्वयं ही रास्ता बना लेता है।

इस बार प्रतीक्षा में हूँ
तुम फुरसत में नहीं,
फुरसत निकाल कर आओगे...
आओगे न?

डॉ. प्रीति समकित सुराना
संस्थापक:- अन्तरा शब्दशक्ति

रात के अंधियारों में

ये हॉस्टल के कमरों से चमकती रोशनी,
रात के अंधियारों में को दूर नहीं करती,
ये रोशनी उन हजारों बच्चों के,
भविष्य को रोशन करती है,
जिनकी आँखों में कई ख़्वाब सज रहे होते हैं,
इसी रोशनी में पढ़कर बच्चे,
डॉक्टर, इंजीनियर,नेता, कलेक्टर,
तो कोई देश का रक्षक बनता है,
कितने ही बच्चे,
अपने माता पिता के सपनों को साकार करते हैं,
माता पिता भी इन बच्चों में अपने सपने बुनते हैं,
और उनका सपना ये बच्चे सच करते हैं!

इन्ही रोशनी के बीच कई चिराग बुझ जाते हैं,
क्योंकि,
वो कई तनावों से ग्रसित हो जाते हैं,
कहीं माता पिता की जिद,
कहीं कोचिंग के शिक्षकों का दबाव,
उन्हें सपने साकार नहीं करने देता,
और वो न चाहते हुए भी,
ग़लत कदम उठा ले जाते हैं!

घर से दूर अनजान शहर में,
बस ये कमरा ही उनका अपना होता है,
हर बच्चा एक ख़्वाब लिए घर से निकलता है,
दिन रात हर वक्त सिर्फ़ किताबों में ध्यान रहता है,
हर बात का ये कमरा ही तो साक्षी होता है,
अपने सपनों को पंख लगा,
आसमाँ छूने की ताक़त,
इन्ही बंद करों से मिलती है,
आशा निराशा के बीच झूलती जिंदगी को,
ऊँचाइयाँ यहीं से मिलती हैं,
हर सफलता असफलता का राज,
इन्ही बंद कमरों में दफ़न होता है,
हर बच्चों को नई मंजिल भी यहीं से मिलती है!

अदिति रूसिया
वारासिवनी

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का अंतरराष्ट्रीय मंच।

झोले में ज़िंदगी

"दुनियादारी के चमकीले रैपर में सिमटी चॉकलेट सी ज़िंदगी की मिठास का अहसास कराता उपन्यास" चेहरों की किताब वाला यह प्लेटफॉर्म भी एक विशाल झोला है जिसमें अनगिनत चेहरे हैं। हर चेहरे की अपनी कुछ निशानियाँ और कहानियाँ हैं। लेखन के युवा हस्ताक्षरों में एक सशक्त चेहरा है मेघा राठी का। भीड़ से इतर कुछ अलग कथ्यों को उभारती ऐसी लेखनी जिसकी भीनी-भीनी गंध का सम्मोहन पाठक को खींच लाता है अपनी तरफ़। इस बार मेघा के झोले में एक नहीं अलग-अलग ज़िंदगियों की दास्तान, बीते हुए कल के अनुभव, भावनाओं और जीवन के उतार-चढ़ाव तथा खुशियों के साथ गमों के अलहदा फ्लेवर की चॉकलेट के रूप में बेहद करीने से सजी हैं। बाल्यकाल, किशोरावस्था और युवावस्था की इन यादों से गुजरते हुए क़तील शिफ़ाई का शे'र,

यूँ बरसती हैं तसव्वुर में पुरानी यादें, जैसे बरसात की रिम-झिम में समाँ होता है

बरबस ही ज़हन में घुमड़ता रहता है क्योंकि मेघा ने यादों के ताने-बाने पर ही इस उपन्यास को बुना है। सूत्रधार है एक बच्ची जिसके बचपन से तरुणाई के सफ़र में दिल के दरवाज़े पर प्यार की दस्तक बार-बार सुनाई दी है। कभी स्कूल में कच्ची धूप सा प्यार का अहसास जिसमें हरारत है मगर तपिश नहीं है। युवावस्था में वही चाहत जैसे जेठ की दोपहर की धूप सा लगा है जिसमें सूरज, सिर पर दहकता और जिस्म को झुलसाता लगा है।

प्यार अगर चिंगारी बन दामन को जलाता है तो उसी प्यार का मरहम शीतल लेप सा जिस्म-ओ-जान के लिए राहत बन जाता है। इस अहसास को बखूबी महसूस कराया है मेघा ने ऋतु, सौरभ और राजीव के माध्यम से।

हकीक़त के ऐन करीब लगता है मेघा का यह फलसफ़ा कि "कभी-कभी लगता है, ज़िंदगी कोई भव्य कहानी नहीं होती, वो बस कुछ छोटी-छोटी बातों का, मुलाक़ातों का और ठहरावों का संगम होती है।"

झोले में समाहित ज़िंदगी में प्रेम के शोख रंग के साथ स्त्री विमर्श का धूसर रंग भी पूरी मुखरता से अपनी उपस्थिति दर्ज कराता है। फरहा की अम्मी की बेबसी हो या अपनी माँ की कोख से बेटा ना जनने का दर्द या फरहा का इमरान से छला जाना... कहीं न कहीं औरतजात की दुश्वारियों की नजीर लगते हैं। झुमकी, महज़ किरदार नहीं है अपितु उस किरदार से मेघा ने समाज का दोगलापन और पाखंडी चेहरा बेनकाब कर दिया है। झोले में बद्री का होना भी केवल इत्तेफ़ाक नहीं लगता। उस थर्ड जेंडर को कहानी में शामिल कर मेघा ने एक अलग ही प्रसंग जोड़ दिया है जो संक्षिप्त होकर भी बहुत बड़ा संदेश दे रहा है। मध्यमवर्गीय संयुक्त परिवार के इर्द-गिर्द घूमती कहानी कहीं भी कोरी कल्पना नहीं लगती। मेघा ने अपनी कल्पना को यथार्थ में तब्दील कर दिया है और आरम्भ व अंत के पूरे सफ़र में पाठक को गहरा जुड़ाव महसूस हुआ है घटनाक्रम और पात्रों के साथ। कुल मिलाकर यह उपन्यास मेरे साहित्यिक झोले में बेशकीमती चॉकलेट सा समा गया है जिसका स्वाद बड़ी देर तक जुबान पर चिपका रहेगा।

2026 में समृद्ध पब्लिकेशन, दिल्ली से प्रकाशित 192 पृष्ठ वाले पेपरबैक प्रथम संस्करण का मूल्य 300/- रुपये है। शगुन आर्ट इंडिया द्वारा तैयार आवरण जैसे उपन्यास की पूरी थीम को प्रतिबिंबित कर रहा है। अद्भुत लेखन के लिए मेघा और मनभावन कलेवर में रूपांतरण के लिए प्रकाशक मंडल व समृद्ध पब्लिकेशन के प्रबंध निदेशक श्री विनय माथुर जी बधाई के पात्र हैं।

॥ इति ॥

उपन्यास: मेघा राठी

समीक्षा: मुकेश दुबे

मन छू जाए वही है कविता

कविता
कितनी खास है
मन को छू जाए
बस वही एहसास है ...

शब्दों की ठौर में
कलम के ज़ोर में
मौन कह दी जाए
कविता वही आस है ....

आँसुओं में पिघल के
सच के सांचे ढल के
सवेंदनाओ में घुलकर
कविता वही विश्वास है ....

जीवन के आभाव में
आशाओ के प्रभाव में
मन को धैर्य से बांधे रखना
कविता वही अरदास है ...

कि कविता सृजन करने से लेकर
कविता को जीवांत देने का सफर
अत्यंत जटिल प्रक्रिया से होते हुए
अंतर्मन के भावो को छूकर
मन के भावो में डूब जाना है ......!!

मेरी रुह©
तनूजा नंदिता©
लखनऊ, उत्तर प्रदेश

तपन

दिखाया सूर्य ने तेंवर जलन भू की बढाई है।
तपन ने आसमां से आज क्यों कर ली सगाई है।।

तड़पते हैं परिंदे प्यास ने बेजान कर डाला।
थपेड़े लू के चलते हैं ये कैसी रहनुमाई है।।

न जाने बादलों की बूंद कब बरसेगी धरती पर ।
ये कैसी है सियासत और कैसी बेवफाई है ।।

पशु पक्षी सभी इंसान घबराए से लगते हैं।
सभी ने अर्जियां परमात्मा से यूं लगाई है।।

वही है सबका रक्षक और पोषक सबका मालिक है ।
ये दुनिया है उसी की और सब उसकी खुदाई है।।

स्वरचित मौलिक रचना
निरुपमा त्रिवेदी
इंदौर, मध्य प्रदेश

इंतज़ार

खामोशियाँ ये कैसी,गुमसुम सी हैं हवाएँ
नज़दीक उनका घर था खाली मगर पड़ा है।

अब दूरियाँ ये कैसी,फिर लौट आओगे तुम
खामोशियों से तेरी,मेरी यकीं बड़ा है।

कई बार ताक आऊँ,उस टूटे झरोखे से
मन्नत का धागा मेरा,चौखट पे ही बंधा है।

सपने हसीन संग-संग,मिल लेट जिस पे देखे,
तकिया तुम्हारा,मेरे सिरहाने ही रखा है।

बस इतना बता जाते,क्या हाल है तुम्हारा,
अब हाल मेरा खुद ही,बेहाल हो चला है।

लीना शर्मा

पल पल रंग बदलते रिश्ते

पल पल रंग बदलते रिश्ते
भावुक मन रहते हैं पिसते

कितना भी मन से सींच लो
फिर भी सूखे-सूखे दिखते

हमने दाम लगाये दिल से
उन्हें दिखे हम बहुत ही सस्ते

सही किया जो राह बदल ली
हमने भी बाँध लिए दिल के बस्ते

डोर छोड़ दी अंत में ढीली
तुम्हीं बताओ कितना कसते

अब सपाट राह पर दौड़ेंगे
इस दलदल में कितना धँसते।

डॉ. भारती वर्मा बौड़ाई

रोटी

अजीब सी कशमकश से गुजर रही थी मैं। आकांक्षा समिति की सदस्य होना एक बात है, और उसकी सचिव का पद ग्रहण करना अलग। पद के साथ जुड़ी जिम्मेदारी और छोटे-छोटे बच्चों की जिम्मेदारी को एक साथ क्या मैं निभा पाऊंगी? बार-बार यही एक प्रश्न, हथौड़े की तरह मेरे दिमाग में घनघना रहा था।

"रागिनी ये बहुत सौभाग्य की बात है कि तुम्हें इस पद के लिए चुना गया है। तुम इसे मना करने की बात कैसे सोच सकती हो?" आश्चर्य अनुराग के स्वर में स्पष्ट झलक रहा था। "आप समझ नहीं रहे। ये बहुत बड़ी जिम्मेदारी है और इसमें बहुत समय जाएगा। अपने बच्चों का समय मैं किसी को नहीं दे सकती। फिर आकांक्षा समिति की सदस्य के रूप में तो मैं काम कर ही रही हूँ ना?"

"दोनों में बहुत अंतर है रागिनी। मेरी बात मानो। इसे स्वीकार कर लो। देखना इस अनुभव के बाद तुम्हारा व्यक्तित्व कितना निखर जाएगा।" पतिदेव ने समझाने का प्रयास किया। "किसी वरिष्ठ सदस्य को भी तो सचिव चुना जा सकता है। जिसके बच्चे बड़े हों, जो समय दे पाए। मुझे ही क्यों?" शब्दों के साथ-साथ मेरा प्रश्न मेरे चेहरे पर भी लिखा हुआ था।"यही तो तुम्हें समझने की जरूरत है। सब तुम्हारी योग्यता को देख रहे हैं, परख चुके हैं। तभी तो तुम्हें चुना है।" अनुराग मुझे आश्वस्त करना चाहते थे।

"......................" मैं मौन उनकी आँखों में अपने सवालों के जवाब ढूंढ रही थी।

"तुम खुद अपनी क्षमताओं के बारे में नहीं जानती। मेरा विश्वास मानो, तुम दोनों जिम्मेदारियों को बहुत अच्छे से निभा सकोगी। एक बार कदम आगे तो बढ़ाओ। फिर मैं तो हूँ ना तुम्हारे साथ।" अनुराग के कहे शब्द कानों में मिश्री तो घोलते थे, पर मेरे अंदर के डर को कम नहीं कर पा रहे थे। साथ की अधिकारी पत्नियों, आकांक्षा समिति की अध्यक्षा, सखियों और पति, कुल मिलाकर सभी के अनुरोध या दबाव के चलते, मैंने हाँ कह दिया। इसमें सबसे बड़ा योगदान आकांक्षा समिति की अध्यक्षा के इस वादे का था कि मैं, बच्चों के स्कूल जाने के बाद से बच्चों के स्कूल से लौटने तक का समय ही इस काम के लिए दूंगी। इसी आश्वासन की डोर थामें मैं आकांक्षा समिति की सचिव बन गई।

इसी के साथ आरंभ हो गईं मेरी भागमभाग भरी जिंदगी। सुबह बच्चों के स्कूल जाते ही पति को ऑफिस के लिए विदा करने के साथ ही साथ मैं भी घर छोड़ देती। हम आकांक्षा समिति के सदस्य किसी गांव में जाकर जागरूकता जगाने की कोशिश करते। पर्यावरण, साफ-सफाई, शिक्षा, पानी और स्वास्थ्य का रख रखाव, जैसी अनेक बातें उन्हें समझाते। कभी किसी आंगनवाड़ी जाकर वहाँ के बच्चों और उस आंगनवाड़ी की कार्यप्रणाली का निरीक्षण करते। सलाह देते, सुझाव देते। कभी टीकाकरण, कभी आँखों की जांच का कैम्प, कभी महिलाओं की जांच का कैंप। अंधविश्वास दूर भगाने के लिए प्रयास। यानी कितने ही काम हम सब मिलकर करने की कोशिश करते। और इसी क्रम में वो घटना घटी। हमारी गाड़ी, काली चिकनी सड़क पर सांप की तरह बल खाती तेजी से सरपट दौड़ती जा रही थी। सड़क के बगल में बुंदेलखंड की लाल मिट्टी या कहें मोरंग जैसी मिट्टी एक अलग ही एहसास से हमें भर रही थी। बुंदेलखंड की सड़कों के किनारे अधिकांश जगह छोटी-छोटी बेरी के पेड़, बबूल के पेड़ अपने पूरे वजूद के साथ झूमते दिखाई देते। यही उस रूखी, सूखी भूमि को हरियाली से भरने के लिए युद्ध करते से प्रतीत हो रहे थे। शहर से बाहर निकलने के साथ ही चारों ओर खाली बंजर भूमि पर कहीं-कहीं पर बड़े-बड़े पत्थर के टीले। हम सभी के मन को पर्यावरण के लिए काम करने के लिए निश्चित रूप से प्रेरित तो कर ही रहे थे।

लहराती हमारी तीन गाड़ियों की टोली। एक गांव में प्रवेश कर गई। गाव के साथ उस ब्लॉक के अधिकारी भी वहाँ हमारे स्वागत में मौजूद थे। बुंदेलखंड के अधिकांश गांव गरीबी के निचले पायदान पर ही हैं। अधिकांश पुरुष रोजी-रोटी के लिए अपने-अपने काम धंधे पर जा चुके थे। क्योंकि महिलाओं को बताया जा चुका था इसलिए वे हमारे स्वागत के लिए एक घने पेड़ के नीचे इकट्ठा खड़ी थीं और कुछ बैठी। हमारे लिए कुछ प्लास्टिक की कुर्सियों की भी व्यवस्था की गई थी। संभवत: ब्लॉक वालों ने करी होगी। लगभग आधा घंटा उन महिलाओं से बात करने के बाद उनकी समस्याओं को सुनने और किस विभाग को क्या काम इस गांव में करने के लिए कहना है। उसके नोट्स बनाने के बाद हम गांव के भ्रमण पर निकले। झोंपड़ी के अंदर प्रवेश करने पर एक अलग ही सच से सामना हुआ। छोटी-छोटी झोंपड़ियों में फर्नीचर के नाम पर कुछ भी नहीं था। किसी-किसी घर में टूटी फूटी सी खटिया भर पड़ी थी। बर्तन के नाम पर कुछ मिट्टी के बर्तन और कुछ घड़े जिन्हें ढका गया था। झोंपड़ी में एक सिरे से दूसरे सिरे तक बंधी डोरी पर। दो चार कपड़े टंगे थे। छोटे-छोटे अधनंगे से बच्चे पूरी मस्ती के साथ खेल रहे थे। उन्हें ज़िंदगी से कोई शिकायत नहीं थी। वो बहुत मस्त और खुश दिख रहे थे। अपने बच्चों के चेहरे की मुस्कान देख-देख कर उन महिलाओं की आँखों में आ रही चमक को देखकर हम चकित थे। ज़िन्दगी ऐसे भी जीते हैं क्या? हमारी आँखें एक दूसरे से पूछ रही थीं।

ऐसी गरीबी से यह मेरा पहला साक्षात्कार था। मैं स्तब्ध ही नहीं द्रवित और आहत भी थी। ईश्वर को धन्यवाद दे रही थी कि उन्होंने मुझे इनके लिए कुछ काम करने का यह सुनहरा अवसर दिया था। जिस काम को मैंने बहुत हिचकिचाते हुए हाथ में लिया था। आज अचानक उसी काम के प्रति मेरे मन में अथाह समर्पण पैदा हो गया था।

एक झोंपड़ी के अंदर जैसे ही हम प्रविष्ट हुए। एक दस- ग्यारह साल की बच्ची घड़े में से कोई पाउडर जैसी चीज़ निकालकर उसका घोल बना रही थी।

"क्या खा रही हो बिटिया?" हमारी अध्यक्षा ने प्यार से पूछा।

उसने अपनी बड़ी-बड़ी आँखें उठाकर हमारी ओर देखा और तीन चार बार अपनी पलकें झपका कर फिर अपने खाने में व्यस्त हो गयी।

"ई बेरी का चूरन है।" उसकी माँ जल्दी से आगे बढ़कर बोली। ग्राम प्रधान विस्तार से बताने लगे, "मैडम, यहाँ बहुत गरीबी है। इन सबके पास खाने को बहुत नहीं होता है। आस पास की जितनी भी झर बेरी हैं, ये लोग वहाँ से ये बेर तोड़ के ले आते हैं। और उसे सुखाकर उसका पाउडर बना के रखते हैं। और जब इनके पास खाना नहीं होता है तो उसी का घोल बनाकर उसमें नमक मिलाकर पी लेते हैं। खाली पेट काम पर जाने पर लू लगने का डर होता है। इसलिए बेरी का पाउडर बहुत मदद करता है।" मेरी आँखों के आगे पार्टियों में व्यंजनों से भरी झूठी प्लेटों का दृश्य घूमने लगा। आधा खाया, आधा फेंका किसी को कोई फर्क ही नहीं पड़ता । एक अजीब सी अपराध भावना मुझ पर हावी हो रही थी। हम इतने आत्मकेंद्रित कैसे हो सकते हैं? मेरी अध्यक्ष, मेरे भावुक मन के बारे में जानती थीं। उन्होंने मेरी ओर देखा और धीरे से मेरे कंधे पर हाथ रखा और झोंपड़ी से मेरे साथ बाहर निकल आई ।

सब उनके पीछे पीछे चल रहे थे। कुछ-कुछ बातें भी हो रही थीं। पर मुझे तो कुछ भी सुनाई नहीं दे रहा था। मेरे अंदर कुछ उमड़ घुमड़ रहा था। तभी मेरी नज़र अधिकांश झोपड़ियों की छत पर सूख रही रोटी और पूड़ी पर पड़ी। मैं आश्चर्य से भर उठी की इतनी गरीबी वाले परिवेश में छतों पर कोई रोटी और पूड़ी क्यों फेंकेगा? आश्चर्य से भर कर मैंने पूछा, "ये आप लोग छतों पर रोटी क्यों फेंक देते हैं?"

मेरे साथ चल रही गाँव की उस महिला ने आश्चर्य से मुझे ऊपर से नीचे तक देखा। उसकी नज़र साफ-साफ बोल रही थी। 'कैसी मूर्ख हो तुम? क्या इतनी छोटी सी बात भी तुम्हें नहीं पता?'

"मैंने कुछ गलत कह दिया क्या?" अपराधी की तरह मैंने पूछा।

"नहीं मेमसाहब, आपकी गलती नहीं है? आप क्या जानो हम गरीबों की परिस्थिति।"

उसे शायद। मुझ पर दया आ गई थी। क्योंकि उसकी आँखों में अब गुस्सा नहीं था।

"................." बिना कुछ बोले? प्रश्नवाचक नज़रों से मैंने उसकी ओर देखा।

"आप जानना चाहती हैं न इन रोटियों का हम क्या करते हैं? उसने पूछा।

"हाँ।" जाने कैसे मैं बोल पाई। "अगर कभी आप जैसों के घर से किसी त्योहार पर या जन्मदिन पर हमें खाने में पूड़ी, पराठा या रोटी कुछ भी मिल जाता है तो हम उसे पूरा खाकर उसी दिन खत्म नहीं करते। अपनी दो रोटी, जो रोज़ खाते हैं, वही खाते हैं और बाकी बची हुई को छत पर सुखाकर घड़े में रख लेते हैं। जिस दिन हमारे पास खाने को अनाज नहीं होता, इसी सूखी रोटी या पूड़ी को पानी में भिगाकर बेरी के पाउडर को उसमे मिलाकर हम और हमारे बच्चे खाते हैं।"

मेरा मन फूट फूटकर रोने का कर रहा था। मैं किसी भी तरह से उस महिला से आँख नहीं मिला पा रही थी। मैंने अचकचाकर अपने साथ वाली महिलाओं की ओर देखा जो अपनी ही बातों में मशगूल हँसती मुस्कराती आगे बढ़ती जा रही थीं। मोटे-मोटे सोने के कंगन, डायमंड की अंगूठी, गले में मोटी सोने की चेन, तन पर महंगी साड़ी में सजी ये महिलाएं इस पूरे परिवेश में पैबंद सी लग रही थीं। हम जिनके लिए काम करने आए थे, उनकी पीड़ा ही समझ नहीं पाएंगे तो काम क्या करेंगे? ये बड़ा सा प्रश्न मेरे सामने आ खड़ा हुआ था।

उसी समय अध्यक्षा की आवाज सुनाई दी। लगा जैसे उन्होंने मुझे इस कठिन परिस्थिति से उबार लिया। "रागिनी चलें क्या वापस? आपके बच्चों के आने का टाइम होने वाला होगा ना?"

"जी हाँ चलते हैं।" मैंने भरसक मुस्कराने का प्रयत्न किया। मैं उस महिला की ओर घूमी उसे गले से लगाया और धीरे से बोली, "मैं आऊंगी। और हम सब मिलकर कुछ ऐसा करेंगे जिससे कुछ धन आप लोग कमाने लगे।" वह फटी-फटी आँखों से मुझे देख रही थी। मैं जानती थी उसे मेरी बात पर विश्वास नहीं है। पर मुझे पता था। मेरा निश्चय दृढ़ था, मुझे कुछ करना था।

-नीलम राकेश
केशव नगर कॉलोनी, सीतापुर रोड, निकट सेंट्रल बैंक, लखनऊ
8400477299, neelamrakeshchandra@gmail.com

थोड़ा है थोड़े की जरूरत है

जीवन की इस दौड़ में ,
पाने खोने की होड़ में ।
जिंदगी यूँ ही ,
गुजरती जा रही है ।
ख्वाहिशों का पुलिंदा ,
बड़ा है बहुत ।
लगता है चाहतें ,
तरसा रहीं हैं ।
यूँ तो पास में है ,
मेरे बहुत कुछ ,
मगर ला हासिल ,
ही नजर आ रहीं हैं ।
देख कर के ,
दुनिया की चकाचौंध ।
मन मेरा ,
डूबता उतरता सा है ।
नींद उड़ती मेरी ,
चैंन खोता भी है ।
मस्तिष्क में ,
चलती रहती है ,
उधेड़बुन ।
गिन गिन के कमियाँ ।
दिल मेरा,
जार जार रोता भी है ।
अंतर्मन कहता है तभी ,
न हो तुम उदास ,
जिंदगी है पड़ी ।
थोड़ा है थोड़े की जरूरत है ,
जिंदगी ये बड़ी खूबसूरत है ।
जो नहीं है ,
वो भी मिल जायेगा ।
पा कर के ,
वो तू क्या ठहर जाएगा ।
ख्वाब बुनेगा नहीं ,
फिर कोई नया ।
क्या जीवन में ये दिन ,
कभी आएगा ।
सुन कर अंतस की ये बात
हंस कर कहा ,
उससे मस्तिष्क ने ,
है जिंदा तभी तक ,
ये जीजीविशा ।
जब तक पलते रहेंगे ,
आँखो में नित नए सपने ॥

स्मृति गुप्ता
(जबलपुर)

नीर-रेख

सुनो!
क्या याद है तुम्हें?
कल की वो अल्हड़,
विश्रंखलित,
अठखेलियाँ करती....
निर्झरिणी मैं ही थी;

कभी ऊँचाई से गिरती
संभलती,
कभी फिसलती,
चोट को सहती
उठती...हँसती, चल देती
नवयौवना सी.....
तरंगिणी मैं ही थी;

तो कभी
कलकल छलछल करती,
हठीली, चंचल
निर्बाध सरि,
कावेरी,
मंदाकिनी मैं ही थी;

कभी लेकर रूप
धीर-गंभीर, शांत
झील सी..
रुकी-ठहरी,
स्थिरता की
परिभाषा मैं ही थी;

किंतु,
तुम्हारी सागर सम
वृहद् प्यास के आगे
न टिक सकी
मेरी तपस्या
संतुष्ट करते करते तुम्हें
रीतती चली गई,
सिमटती चली गई मैं,
नाम मात्र की नीर रेख में....

और अब,,,
पूर्णतया रिक्त हूँ
इस छोर से उस छोर तक
बाहर से भीतर तक
अब आर्द्रता कहाँ से
लाऊँगी?
क्षमा करना....
कि
मैं तुम्हें तृप्त
नहीं कर पाऊँगी!!

-प्रेरणा पुरोहित मंत्री
(जयपुर)

स्वतः सृजित कविताएँ

सूरज की किरणों में घुलकर,
पेड़ों से छनती है कविता ।।

कौन समीक्षा कर पाएगा,
स्वतः सृजित इन कविताओं की ?
कौन परीक्षा ले पाएगा,
आग पे चलते इन पांवों की ?

अंतस के आकुल पंछी की,
कौन यहां चीत्कार सुनेगा ?
सब केवल शब्दों की हवा में,
खोने वाली गूंज सुनेंगे ।

उसी गूंज की थाम के उंगली,
चलते जाएंगे शब्दों पर ।
आखिर में सब चौराहे से,
अपनी अपनी राह चुनेंगे ।

कौन प्रतीक्षा कर पाएगा,
पीछे छूट चुके भावों की ?
कौन समीक्षा कर पाएगा,
स्वतः सृजित इन कविताओं की ?

मछुआरे के जाल फंसे जो,
ऐसी मीन नहीं है बंधू ।
सागर की लहरों सी पल पल,
मिटती है, बनती है कविता ।

कहीं स्वाति की बूंद में ढलती,
कहीं चातक की प्यास में पलती,
सूरज की किरणों में घुलकर,
पेड़ों से छनती है कविता ।

कौन अंजुरी भर पाएगा !
संवेदन बिन पीड़ाओं की ?
कौन समीक्षा कर पाएगा,
स्वतः सृजित इन कविताओं की ?

शेखर "अस्तित्व"

मर्यादा पुरुषोत्तम राम

राम तेरी मर्यादा को
आज मैंने है जाना
आत्मसात किया
तब मैंने यह माना

त्रेता से कलजुग तक
सुनते आये गाथा
लाख मुसीबत आई
पर तोड़ी न मर्यादा।

कैकई के कठोर वचन
तोड़ सकते थे पल में
अपने पिता के वचनों की
रखी थी मर्यादा तुमने।

सारे जग की नैया के
तुम ही हो खिवैया
मर्यादा की खातिर
चढ़े थे केवट नैया।

तुम सर्वज्ञ सर्वव्यापी
तुम थे घट घट के वासी
मर्यादा की खातिर
साथ लिए वनवासी।

क्षीरसागर के स्वामी
पल में पार किया होता
आव्हान कर पयोधि का
राम ने की शक्ति पूजा।

सीता मैया से मिलते
कोई लीला समझ न पाया
मर्यादा की खातिर
हनुमत को पहुंचाया।

नीति न्याय और नेतृत्व में
तुम सा जोड़ न पाया
विभीषण और सुग्रीव का
राज, तुमने था लौटाया।

नर रूप धर नारायण ने
लीलाएं दिखलायीं
मतिमंद मानव को
पर वे समझ न आयीं।

कीर्ति प्रदीप वर्मा

इस उजास में

गहन तिमिर में ज्योतिर्मय है,
दीप आस का।
ऋणी रहा है ऋणी रहेगा,
जग उजास का।

यह उजास कुछ और नही,
है रूप तुम्हारा।
इस उजास को रोम-रोम से,
नमन हमारा।

हर लेता है अंधकार सब,
आस-पास का।

इस उजास से महक रही,
जीवन फुलवारी।
इस उजास से अंधकार की,
सत्ता हारी।

इस उजास में खेल रचा है,
महारास का।

इस उजास के परिधि कोण में,
जो भी आता।
नेहिल किरणें नव उजास की,
हँस कर पाता।

भेद न जाने है उजास यह,
आम-खास का।

**मनोज जैन
भोपाल
(म.प्र.)**

गीत- अरी वेदने!

अरी वेदने! लगती मुझको तू जीवन का सार

आती हो जब कभी वेदने! मेरे मन के द्वार
स्वागत में नयनों से झरता ,अमृत- पारावार ।
ये सारा जग लगता मुझको तो केवल निस्सार
तेरे आने पर हो जाते सुख -दुख एकाकार ।।
अरी वेदने! लगती मुझको तू जीवन का सार ,,,।१।

जग देता है जब-जब ठोकर मुझको बारम्बार,
तब तेरी ही गोद मिली है बनकर दृढ़ आधार।
तेरी पीड़ा है सिखलाती जीवन का विस्तार,
तेरे संग ही समझा मैंने हँसने का अधिकार।
अरी वेदने! लगती मुझको तू जीवन का सार ,,,।२।

मन थककर जब बैठ जाता जग के बीच अपार,
तब तेरी ही शीतल छाया देती नया विचार।
तेरी हल्की आहों में भी छिपा गहन उद्गार,
तू ही तो दे जाती मन को धीरज का उपहार ।
अरी वेदने! लगती मुझको तू जीवन का सार ,,,।३।

तेरी राहों में चलकर ही जाना यह व्यवहार,
जीवन फूल नहीं है इसमें कांटों की भरमार।
सुख तो जैसे क्षणिक हवा है,आता बारम्बार,
पर तेरी गहराई देती ,मन को सच्चा विस्तार।
अरी वेदने! लगती मुझको तू जीवन का सार ,,,।४।

**~ पंकज जुगनू
6266293548**

अच्छा है

अपनेपन का भाव रखो तो अच्छा है
समदृष्टि समभाव रखो तो अच्छा है

समर भूमि में जब भी उतरो लड़ने को,
ज़रा बचाकर दाव रखो तो अच्छा है

इस जीवन में कुछ मक़सद तो होना ही,
सहज-सरल बरताव रखो तो अच्छा है

यार अदब में जीना ही तो जीवन है
सादापन पहनाव रखो तो अच्छा है

सबसे मिलना-जुलना अच्छा है लेकिन
मिलने में ठहराव रखो तो अच्छा है

**-किशोर छिपेश्वर
"सागर"
बालाघाट**

शरीर के रिश्ते

सुनो कृष्ण,,,
क्या करूँ कि ,
विस्मृत हो जाएँ,
वो पल,
जो वेदना से भर देते हैं,
इस मन को।
कई कई बार तो,
चेतनाशून्य कर देते हैं,
वो किस्से,
जो अकल्पनीय भी होते हैं,
क्योंकि ,
आशा से,
बिल्कुल विपरीत,
जैसे 180 ड्रिग्री का कोण हो।
इतना बदला हुआ व्यवहार,
कैसे कर लेते हैं लोग,
जैसे कोई व्यापारी ,
व्यापार के लिए,
झूठ का सहारा ले रहा हो।
सच में तो तब,
संसार से नाता तोड़ने का ही
मन करता है ।
फिर डट जाती हूँ दुबारा,
तुम्हारी शिक्षा का ध्यान करके,
कि कर्म युद्ध है,
अपना कर्म निष्काम भाव से
करते रहो,
शरीर के रिश्ते हैं,
शरीर छूटते ही,
छूट जाएँगे।
रिश्ते की भी उम्र होती है,
जब मूल्य चुका लूँगी,
अपने पिछले कर्मों का।
तब यह द्वंद्व भी छूट ही
जाएगा।
बस हर बार,
तुमसे मिलने की आशा के
साथ,
फिर जुट जाती हूँ ,
एक नए विकल्प के साथ,
उस नए कर्तव्य को जीने।
पर वादा करो कृष्ण,
इसके बाद तो ,
मिलोगे न मुझे???

**पिंकी परूथी
'अनामिका'**

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का अंतरराष्ट्रीय मंच।

तट पर टिका वृक्ष

बहती नदी के तट पर टिका वृक्ष
ताक रहा सूनी टहनियों को

पत्तियाँ ने छोड़ दिया साथ
छोड़ कर टहनियों पर अमिट चिह्न

जरठ जड़ें देने लगीं जबाब
मिट्टी पर नहीं रही पकड़ उनकी अब
पहले जैसी

लद गए
फूलों से लदे रहने के दिन
भ्रमरों तितलियों की आवाजाही
नहीं होती अब

चुन लिया रैन बसेरा
पखेरुओं ने अन्यत्र कहीं
नहीं रहा भोर और सांझ का कलरव
शेष है केवल नीरव

हवा पानी प्रकाश अभी यथावत् यथेष्ट
कदाचित् शेष नहीं
या बहुत कम रह गई
उम्र
तट पर टिके वृक्ष की.

राजेंद्रश्रीवास्तव

ग़ज़ल

क़ाबा मज़े है कहीं काशी मज़े में है।
इनसे हरेक आज का न्यासी मजे में है।

खुलता उसी से, बंद भी होता उसी से है,
ताले को जिससे लग रहा चाबी मज़े में है।

जनता पकौड़े तल रही सरकार के लिए,
खाकर उसे हरेक सियासी मज़े में है।

बेहाल है गरीब चरा भेड़-बकरियाँ,
उनको ख़रीद आज कसाई मज़े में है।

चूज़े भी उड़ रहे हैं जवां पंछियों को देख,
बचपन ये सोचता है जवानी मज़े में है।

शौहर ने जब पगार दी बीवी के हाथ में,
देवर को लग रहा है कि भाभी मज़े में है।

हो साफ़ बात तो उसे सुनता नहीं कोई,
हालात ऐसे देख के गाली मज़े में है।

भाऊराव महंत
बालाघाट, मध्यप्रदेश

वो स्त्री

वो स्त्री
जो सच में तुमसे प्यार करती है,
वो यूँ ही एक सुबह उठकर
तुम्हें छोड़ देने का फैसला नहीं करती।

वो तो महीनों तक
अपने ही दिल को समझाती है,
हर चोट को चुपचाप सहकर
तुम्हारी तरफ़ एक और मौका बढ़ाती है।

वो हर रात
तकिये में चेहरा छुपाकर सोचती है,
कि शायद कल
तुम थोड़ा और उसके हो जाओगे,
और उसका इंतज़ार
किसी मंज़िल तक पहुँच जाएगा।

मगर जब थक जाती है
अपने ही मन को मनाते-मनाते,
जब उम्मीदें
खुद ही उससे सवाल करने लगती हैं,
तब वो धीरे-धीरे
तुम्हारे बिना जीना सीखने लगती है।

और जिस दिन
वो खुद को समझाना सीख जाती है,
अपने आँसुओं को
खुद ही पोंछना सीख जाती है,
ठीक उसी दिन
वो तुम्हें नहीं छोड़ती।

वो तो बस
खुद को वापस पा लेती है,
और तुम्हारी होकर जीती औरत
आख़िरकार
सिर्फ़ अपनी हो जाती है।

राहुल आर्यन

कविता

जिसे तुम देते आये हो
उलाहना..
नाम पर रीतियों..
परम्पराओं..संस्कारों के..
मर्यादाओं के..।
जिसका समय के साथ
बदलना, तुम्हे
सबसे पहले कटु लगा..
असह्य लगा..।
जिसके कपड़ों से
तुमने मापा है सदा,
कद सभ्यता का..।
तुमने सदा जिसे
बना कर रखा
संस्कारों के पतन
मापने का मीटर..।
जिसके सर पर
धरा हुआ है तुमने
परम्पराओं का
हद से भारी पोटला..।
जिसे तुम बैठे-बैठे
आँकते हो..,
हाथ में मसलते हुए खैनी
कभी खींचते हुए
बीड़ी का धुँआ..
लगाते हुए
सिगरेट के कश..या
कभी पीकर महँगी शराब..।

हालाँकि वो बदलती हुई औरत
आज भी जानती है
सलीके से साड़ी पहनना..।
बिंदियाँ लगाना..
और सजा कर रखना
घर और घर की
दहलीज को..।
तुम्हारे सुसंस्कारित घर का
वह आज भी बनी हुई है
तोरणद्वार..!

हालाँकि.. तुम
भूल गए हो
धोती में
गाँठ लगाना भी..!!

हेमन्त बोर्डिया

उड़ती पतंग

उस उड़ती हुई पतंग को भी ,
ढील देना होता है ,
कुछ उलझी सी ,
कुछ सुलझी सी,
डोर को भी ,
ढील देना होता है ।
यूही आसान नही होता है ,
आसमा छूना ,
उसे छूने के लिए,
कभी परिंदों से ,
तो कभी हवा से लड़ना होता है ।
संभलना होता है ,
उड़ रहीं उन ,
दूसरी पतंगों से,
बच कर आगे,
बढ़ना होता है।
मांजा की मजबूती,
संग बंधी वो पतंगे डोर,
चाह लिए छूने आसमा,
उड़ने वो अमान का ओर छोर,
उस डोर पर भरोसा करना होता है।
कुछ इसी तरह जीवन मे,
हमे भी आगे,
बढ़ना होता है,
उस उड़ती पतंग की तरह ,
संघर्ष के साथ,
आगे बढ़ना होता है।

प्रज्ञा जायसवाल
नागपुर

मन के याचक

सारा जग डूबा है दुख में,
गले गले तक गहरे।

भूखों ने आटा दालों से,
स्वप्न अधिक कब पाले।
नन्ही नन्ही इच्छाओं पर,
लगा लिये हैं ताले।
पीर करे उपहास ठठाकर,
कान सुखों के बहरे।
**
कुछ दुखियारे ऐसे जिनकी,
चाह अजब मतवाली।
आधी भरी देखकर रोते,
प्याली आधी खाली।
द्वार-द्वार पर ख़ुशी माँगते,
मन के याचक ठहरे।
**
लिखे भाग्य में कहीं विधाता,
दुख के पृष्ठ अँधेरे।
कहीं धूप छलनी से छानी,
बना लिये हैं घेरे।
स्वयं लगाये खुशियों के
द्वारे पर, सौ सौ पहरे।
**
पैर सँभाला बड़े जतन से,
सिर में चोट लगी तब।
कुछ उलझे धागे सुलझाये,
उलझन हुई सगी तब।
एक प्रश्न का हल ढूँढा, दस
द्वारे आकर ठहरे।
**
कुछ तन की कुछ मन की पीड़ा,
पीड़ित जग में सारे।
जीवन कब निष्णात हुआ यह,
लाख जतन कर हारे।
एक सँवारो दूजा छूटे,
बिखरे सभी ककहरे।
सारा जग डूबा है दुख में,
गले गले तक गहरे।

सीमाहरि शर्मा,
भोपाल

अनोखे माली

नई पौध को स्वयं लगाकर,
माली सो नहीं पाता है।
नई कोंपल को देख -देखकर,
कितना खुश वो होता है।

सिंचन कर हांथो से अपने,
रखवाली वह करता है।
नन्हीं एक कली आने पर,
कितना खुश हो जाता है।

उस नन्हीं कली को अपने,
हांथो से सहलाता है।
फूल खिलेगा कब बगिया में,
इंतजार वह करता है।

पल -पल फिर वह राह देखता,
समय को वह पकड़ता है।
तब माली की उस बगिया से,
गुलदस्ता सज जाता है।

ये जीवन भी है एक बगिया,
मात -पिता इसके माली।
अपने ही परिवार की देखो!
कैसे करते रखवाली।

पल -पल अपने त्याग के बल से,
घर में लाते खुशहाली।
खुशहाली परिवार संजोती,
सजती सुंदर है थाली।

उस थाली को भरा देखकर,
खुश होते दोनों माली।
इनके गुलदस्तों से सजकर,
परिवार में बढ़ती खुशहाली।

एक धरा का सिंचन करता,
दो परिवार को सींचते हैं।
इस धरा पर ये ही तीनों!
"अनोखे माली "होते हैं।

इन तीनों माली से ही तो,
सुंदर सारी दुनिया है।
घर आँगन बगिया जो महके,
महके सारी दुनिया है॥

सीता गुप्ता
दुर्ग छ. ग.

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का अंतरराष्ट्रीय मंच।

वारासिवनी में 'अन्तरा शब्दशक्ति' का गरिमामय एवं सफल आयोजन

दिनांक 10/04/2026 शुक्रवार को वारासिवनी में उड़ान अंतरा शब्द शक्ति का कार्यक्रम समारोहपूर्वक आयोजन किया गया।

कार्यक्रम में मुख्यअतिथि के रूप में डॉ विकास दवे निदेशक मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी भोपाल मध्यप्रदेश, विशेष अतिथि के रूप में आद. प्रदीप जायसवाल जी पूर्व कैबिनेट मंत्री वारासिवनी, आद. मुकेश दुबे जी वरिष्ठ साहित्यकार सीहोर, डॉ भारती सुराना स्त्री रोग विशेषज्ञ वारासिवनी उपस्थित रहे ।

कार्यक्रम का शुभारंभ माँ सरस्वती के छाया पर पूजन अर्चन के साथ हुआ एवं सुश्री अलका चौधरी द्वारा सुमधुर कंठ से सरस्वती वंदना की गई ।

तत्पश्चात सभी अतिथियों का स्वागत किया गया, एवं अंतरा शब्दशक्ति की संस्थापक प्रीति सुराना जी द्वारा स्वागत भाषण जी द्वारा किया गया एवं अंतरा शब्द शक्ति के बारे में विस्तार से जानकारी दी गई। अतिथियों के द्वारा अंतरा शब्दशक्ति द्वारा प्रकाशित विभिन्न साहित्यकारों की 22 पुस्तकों का लोकार्पण किया गया, WebCodee परिवार द्वारा तैयार की गई वेबसाइड www.antrashabdshakti.com का पुनर्लोकर्पण एवं साहित्य वेबपेज का शुभारंभ किया गया।

सभी साहित्यकारों जिनकी पुस्तकों का लोकार्पण हुआ उन्हें मंच से सम्मानित किया गया।

इसी तारतम्य में कीर्ति वर्मा, अलका चौधरी, पूजा राठौड़, संदीप सोनी, रमा टेकाम, अदिति रूसिया, ऋतु कोचर, सौरभ संचेती सहित अंतरा परिवार के सभी सदस्यों का सम्मान किया गया । पूर्व कैबिनेट मंत्री आद. प्रदीप जायसवाल जी ने अपने उद्बोधन में कहा कि वारासिवनी देश के साहित्यिक फलक पर अपनी जगह बना रहा है ये हम सबके लिए गौरव की बात है।

डॉ विकास दवे जी ने अपने उद्बोधन में भारतीय संस्कृति, राष्ट्रवाद पर जोर देते हुए अनेक उद्धरणों के माध्यम से कहा साहित्य से ही हमारे संस्कारों की मजबूती मिलेगी नई पीढ़ी में राष्ट्रीय चेतना जगाने, और डिजिटल युग में साहित्यिक पत्रिकाओं का प्रकाशन जरूरी है आपने सभी रचनाकारों को बधाई दी।

डॉ भारती सुराना जी ने अंतरा शब्द शक्ति के प्रयासों की सराहना की सबको बधाई दी।

आद. मुकेश दुबे जी ने अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में, संपादक मंडल के एवं रचनाकारों के अथक प्रयासों की सराहना की जिन्होंने अपनी व्यस्त दिनचर्या में से समय निकालकर इस उत्कृष्ट कृति को पाठकों के सामने लाने के लिए कड़ी मेहनत की उन्होंने कहा कि हम सबको किताबें जरूर पढ़नी चाहिए।

अंत में अंतरा शब्द शक्ति की महासचिव कीर्ति वर्मा जी ने सबका आभार व्यक्त किया।

कार्यक्रम में आद. बुलाकीचंद जी सुराना, आद. समकित सुराना जी, आद. गुलाबचंदजी देशलहरा, जैनम सुराना, जयति सुराना, श्रेया कोचर, भव्य सुराना, आद. संजय रूसिया जी, आद. प्रणय श्रीवास्तव अश्क की, अंतू झकास जी, भाऊराव महंत जी, किशोर छिपेश्वर जी सहित सभी साहित्य प्रेमी बंधु सहित पूरा अंतरा परिवार उपस्थित रहा ।

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का अंतरराष्ट्रीय मंच।

विमोचन एवं सम्मान 10/04/2026

प्रत्येक कृति पर सम्मान, अन्तरा शब्दशक्ति की परम्परा के अनुसार निम्नलिखित सम्मान घोषित किये गए, उपस्थित रचनाकारों में से अदिति रुसिया, ऋतु कोचर एवं रमा तेकाम जी को आ. डॉ विकास दवे जी, आ. प्रदीप जायसवाल जी, डॉ भारती सुराना जी द्वारा साहित्य कांति सम्मान 2026 से सम्मानित किया गया। शेष सभी सम्मान डाक द्वारा पुस्तकों के साथ भेजे जाएंगे।

16 से 24 पेज की पुस्तक के रचनाकारों को साहित्य अमृत सम्मान 2026

1. मुक्तक मंजरी- अजय पाण्डेय
2. यादों के साये- रमा टेकाम
3. मौन से शब्द तक- रितु कोचर
4. जीवन सार- अदिति रूसिया (24 पेज)

32 से 44 पेज की पुस्तक के रचनाकारों को साहित्य कान्ति सम्मान 2026

5. ग़ज़ल संग्रह- अजय पाण्डेय
6. शब्द मंजरी- हिम्मत सिंह अरमो
7. जीवन के विविध रंग- रमा तेकाम
8. पर उपदेश कुशल बहुतेरे- रितु कोचर
9. वाह ज़िंदगी- साधना छिरोल्या
10. हृदय चक्षु- सीता गुप्ता
11. भावनाएँ- सोनम लाड़ीवाला
12. मेरे कान्हा- अदिति रूसिया

96-112 पेज की पुस्तक के रचनाकारों को साहित्य विभूति सम्मान 2026

17. शब्दों की गूँज- रितु कोचर
18. मन के भाव- अदिति रूसिया

संस्थापक डॉ. प्रीति समकित सुराना की स्वयं की पुस्तकें (2026)

मेरे गुरु विराट
.......और तुम!
मित्रता के मोती

अन्तरा शब्दशक्ति के साहित्य वेब पेज का भव्य लोकार्पण (10/04/2026)

आयोजन में आ. डॉ विकास दवे जी, आ. प्रदीप जायसवाल जी, श्रीमती स्मिता जायसवाल जी, डॉ भारती सुराना जी, आ. गुलाबचंद देशलहरा जी, श्रीमती प्रेम सुराना, श्रीमती लीला देशलहरा, आ. उत्तम संचेती जी, आ. तरुण सुराना जी सहित अन्तरा शब्दशक्ति परिवार के सभी उपस्थित सदस्यों ने मिलकर 1 अप्रेल से 10 अप्रेल तक के अंकों का लोकार्पण किया।

आ. डॉ विकास दवे जी, आ. प्रदीप जायसवाल जी, डॉ भारती सुराना जी द्वारा लोकार्पण एवं आगामी अंकों के लिए बधाई एवं शुभकामनाएँ दी।

प्यारी प्रीति,

थकती नहीं रुकती नहीं
भयभीत कभी होती नहीं

तभी तो तुम विशेष हो
तुम्हारी शौर्य गाथा अशेष हो

ऊँची उड़ान भरती रहो
विजय गीत गाती रहो

सबके पँखों की ताकत बनो,
मुश्किलों के लिए आफत बनो।

पंख खोलकर उड़ान भरने को आतुर,
स्वस्थ-प्रसन्न रहो, यशस्वी बनो।

अन्तरा शब्दशक्ति कालजयी बने..
मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ।

डॉ भारती वर्मा, बौड़ाई

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का अंतरराष्ट्रीय मंच।

चांदनी की कालिख

चांद के नज़दीक जो सितारा है
मयंक धवल सतह पार्श्व की अधवलता
तमस में करुण चित्कार सुनता है
कि जैसे कोई अबोध के जिस्म में खंजर
पेवस्त करने पे आमादा पागलपन में
जिस्म को गोद रहा हो वहशी और बच्ची
समझ ही नहीं पा रही कि उसे किस कुसूर की सजा
दी जा रही है जबकि होमवर्क तो उसने कंप्लीट कर लिया था
दर्द की कर्राहटों के सिवा उसके हलक़ से कुछ और
निकल ही नहीं पा रहा पीड़ा की प्रतिक्रिया में
आँखों से बह रहे बेबसी के आंसू
आंसू और कर्राहें शहादत हैं
परमपिता के विरुद्ध
उसके जिस्म में योनि रख देने का दुष्कार्य
करने के प्रतिरोध में।

चमकते चांद के बगल में जो सितारा है देखता है
अंधकार में रौशनी के पुजारियों की नृशंसता
कार्बन की स्वर्णिम आभा लिये एलीट सु'वर्ण
घृणित पिपास रंजीत कुत्सित वासनाएं एवं
आदम भक्षी होने तक की वीभत्स क्षुधाएं
वे अघा चुके हैं गाय भेड़ और बतख़ खाते
उन्हें नहीं भाता पशु मांस; पशु आखेट
अट चुके हैं इनसे उनके पेट
इन्हें चाहिए मनुष्य प्लेट में टेस्ट में
जैसे किसी देवता को नर बलि भेंट में।

धन देवों को चाहिए बाल बलि
शिशु मांस भक्षक ; क्षुधा और शिश्न के दास
तृप्त अतृप्त समस्त तृष्णाएं
ख़ब्बीस की खोपड़ी सी भदभदाहट
शरीर एवं शिशिन सदा खड़ा उत्तेजित
अ'भग'वान के उपासक निर्धन नहीं रहते
जानते हैं भली भांति ये कामुक कि
अबोध योनि से दुराचार उभारता रक्त संचार
न'गी साधु बताते और कर्णफट जोगी भी
नौ से नीचे की लड़की से संभोग नपुंसकता हरता है
साधना नहीं यह जड़ता है।

पौरुषता की चाहत में बाल बलात्कार
यौनि एवम् गुदा मैथुन साधिकार
और तदोपरांत भक्षण करते उसी का मांस
तमाम यौगिक यौनिक क़ानून प्रोटोकॉल
ध्वस्त चांदी की चमक में सोने की सनक में
और हीरे की हमक में सैक्स व क्षुधा के नवीन
प्रयोगों में संलिप्त दल्लों की जमात
दिखा रहे हर क़िताब को औक़ात
कि कर्मा जैसा कुछ नहीं ग़रीब की आह
बिगाड़ नहीं सकती कुछ और कोई लाठी बे आवाज़ नहीं
तारीख़ औ अदब गवाह हैं कि सभी अपराधी अत्याचारी
अधिनायक अपनी पूरी उम्र के साथ
जिये अय्याशी आराम तलबी ऐब के साथ।

चांद के अगल जो सितारा है जो देखता है
सब जानता है मूकदर्शक सा अपलक एकटक
कि धनाढ्य के साथ सत्ता है
धनाढ्य के हाथ सत्ता है
धनाढ्य के साथ है पुरोहित
धनाढ्य के साथ हैं शास्त्र शस्त्र
औ न्यायाधीशी नक्षत्र।

चांद के पीछे जो सितारा है देखता है सोचता है
एक प्रतिशत से भी कम मनुष्य ऐश्वर्य सुख भोग में लिप्त हैं
और शेष उनके साधन में लिप्त हैं
वे हैं छोटे व्यापारी खुदरा व्यवसाई
कारीगर कामगर मज़दूर औ मजबूर
जीवन जीने की मशक्कत में संघर्षरत बेचारे
अनजान नहीं जानते कि वे केवल साधन मात्र
एक प्रतिशत से भी कम रक्त पिपासुओं की सिद्धि का
निरन्तर अनवरत जीने की ख़्वाहिश लिये
मर जाना भाग्य है विडंबना है कि षडयंत्र है
यह धनाढ्य देवताओं का तन्त्र है।

हज़ारों मासूम अपहृत किए जाते हैं
ग़रीब बच्चे वे कहां गुम हो जाते हैं
न उन्हें आसमां उठाता है और न धरती निगलती है
इन अनजान लापता मासूमों को
लंपटी वासना डसती है
तामसी खेल खेला गया चमक चांदनी की ओट में
चला गया चांद भी क्षुब्ध हो कर ग्रहण की ओट में।

"मुख़्तार अहमद "

उसी में छुपे लुटेरे

(मनहरण घनाक्षरी काव्य)

मासूम बने चेहरे,भाव मन में गहरे।
मुस्कुराता हुआ जहां,देखो चारों ओर है।

लगते रहे सितारें,झूठे नैनों से निहारें।
गहरी चाल उनकी,देखो चारों ओर है।

सभ्यता दिखाते चलें,खुदगर्जी में है ढलें।
रंग बदलता समां,देखो चारों ओर है।

युग नया झूठी माया,साजिशें भरी दुनिया।
नकाबों में छिपी हुई,देखो चारों ओर है।

कहां में ढूंढता फिरूं,कैसे में यक़ीन करूं।
हर चेहरा नकली,देखो चारों ओर है।

बीतें युग की वो बातें,वही पन्नें याद आते।
आज की भीड़ निराली,देखो चारों ओर है।

मिठास भरी है वाणी,कांटों की छोड़ें निशानी।
वही कारवां निकला,देखो चारों ओर है।

मासूम बने चेहरे,भाव मन में गहरे।
उसी में छुपे लुटेरे,देखो चारों ओर है - - -।

प्रा. गायकवाड विलास
मिलिंद महाविद्यालय लातूर,
महाराष्ट्र

तरुणी और तरुवर

दोनों रब की अद्भुत रचना,
इक तरुणी और दूजा तरुवर..

दोनों चाहें बस थोड़ा प्यार,
करते अपना जीवन निसार..

हौले से दोनों रोपे जाते,
देखभाल से खिल-खिल जाते..

कर दें अपना सब न्योछावर,
बदले में कुछ कभी ना चाहें..

निस्वार्थ भाव से दोनों देखो,
घर-आंगन हम सबका संवारते..

जी-जान से सहेजना ही होगा,
पाई है जो ये अप्रतिम विरासत..

एक-दूजे का ये बनें सहारा,
जब दिल कुछ इनका भर आए..

दोनों का मर्म हमें समझकर,
इनका सम्मान बढ़ाना ही होगा..

एड. सुषमा अग्रवाल नागपुर महाराष्ट्र

आतिश-ए-इश्क़

आतिश-ए-इश्क़ में, जलने का मज़ा है,
देखकर उनको, मचलने का मज़ा है।

वो कर रहे थे बात, अंदाज़ में अपने,
हमको देख ढंग, बदलने का मज़ा है।

ज़हर से ज्यादा, कड़वा है इश्क़ मगर,
हँसते हुए उसको, निगलने का मज़ा है।

फ़ौलाद सा दिल है, मगर कभी-कभी,
मोम के मानिंद, पिघलने का मज़ा है।

औरों के कंधों पर, चढ़कर क्या जाना,
अपने पैरों पर ही, चलने का मज़ा है।

कब तक निहारोगे, चाँद को 'समंदर',
घूँघट में चाँद के, ढलने का मज़ा है।

-गोपेश दशोरा,
उदयपुर, राजस्थान।

तालमेल बढ़िया बैठाती हो.

खाना तुम बहुत अच्छा बनाती हो
रेसिपी में तालमेल बढ़िया बैठाती हो।

खड़े मसालों को दरदरा पीस मिक्सी में
अपने दर्द और थकान को भगाती हो।

गैस जला बर्तन रख, प्यार से एक एक मसाला जब डालती हो,
उस समय अपनी चिड़चिड़ाहट ,गुस्सा सब काफूर कर जाती हो।

उस मसाले को जब तुम आहिस्ता आहिस्ता भुनती हो
अपनी मेहनत का रंग सब्ज़ी में तब मिलाकर उसे पकाती हो।

धीमे धीमे से सब्जी जब वो पकती है
सच, मेहनत तुम्हारी वो दिखती है।

चेहरे का नूर तुम्हारे तब बढ़ जाता है
बनाएं व्यंजन का रंग जब निखर आता है।

घबराती नही,जब करता नही कोई तारीफ,क्योंकि
जानती हो तुम,स्वाद होता है सबका अलग अलग।

खुश होती हो उस समय स्वयं पर मन ही मन
घरवालों की सिखाई शिक्षा को याद कर तब।

खाना तुम बहुत अच्छा बनाती हो
रेसिपी में तालमेल बढ़िया बैठाती हो।

विशाखा सिंघल

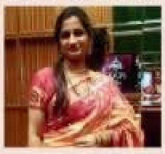

अमलतास

अमलतास के चटक पीले फूल
और गुलमोहर के लाल
जेठ मास में रंग देंगे मेरी सुहाग की चूनर
बोगनवेलिया से कुर्ता रंग लूँगी
पत्तों का सा घाघरा
रंगरेज ये बता रूह को किस रंग से रंगूँ
जो हो गाढ़ा, पक्का सा
मोतिया के फूलों का हार बना लूँ
तो चम्पा के कर्णफूल
चमेली का टीका
और गुलाब की मुन्दरी
अब तू बता माली, इत्र किस फूल का बनाऊँ
की गमके मेरा मन-प्राण अंत तक
माँ की सीख ली माथे पर और पिता का आशीर्वाद
दादी की बलाएँ तो चाचा का स्नेहिल हाथ
पल्ले भाई के आँसू बाँधे तो छोटी का स्पर्श
अनजान साथी ,अनजान घर ,अनजान डगर
अब तू बता नियति
क्या ये घर मेरा नहीं था?
क्या अनजान घर मेरा है?
या दोनो घर मेरे है?
या फिर कोई भी घर मेरा नहीं है?

दीप्ति अग्रवाल

जब मौसम मुस्कुराता है

फिज़ा मदहोश कर देती है
जब मौसम मुस्कुराता है
कुदरत करवट बदलती है
हवा में फूलों की सुगंध फैल
जाती है
खिजां में रंग भर जाते हैं
तबियत बहल जाती है
ना गम याद रहते हैं
और ना कुछ और याद रहता है
बाग में तितलियां टहलने रोज
आती है
मेरा दिल जीत कर लें जाती है
फूलों से लदी डालियों पर पंछी
चहचहाते हैं
इन्हें देखकर ये कायनात भी
मुस्कुराती है।

अर्विना गहलोत

किरदार

तकलीफों में जब तक शुमार नहीं आयेगा
किरदार में ख़ास कोई निखार नहीं आयेगा।

जिसने खाया है धोखा गुलाब की संगत में,
उसे अब किसी फूल पे एतबार नहीं आयेगा।

खुशियों में नाचने आ जायेंगे लोग तुम्हारे संग,
बुरे दौर से निकालने ये संसार नहीं आयेगा।

अपने हक की लड़ाई तुम्हें खुद लड़नी पड़ेगी,
तुम्हारे हक में लड़ने कोई अवतार नहीं आयेगा।

संजय तांडेकर अश्क
पुलपुट्टा, बालाघाट।

कैसे अमृत बनाऊँ

गहराया है अंधेरा इस कदर,
रोशनी की किरण कहा से लाऊं।
दिलों में जहाँ नफरत समा गई,
चिराग वहाँ प्यार का कैसे जलाऊ।
हवा में ऐसा जहर घुल गया,
जहर को कैसे अमृत बनाऊँ।
मतलब के लिए है अपने सभी,
एहसास अपनेपन का कैसे जगाऊ।
फिर उठने लगे है आग के शोले,
किस तरह शोलों को शबनम बनाऊँ।
कौन सुनेगा तेरी फ़रियाद श्वेता,
जाकर किसे मैं फ़रियाद सुनाऊँ।
न जाने कैसे यह हालात हो गए हैं,
इसकी क्या मैं वज़ह बताऊँ।

श्वेता राजू सोनेकर
वारासिवनी

शक्ति छन्द

कभी राह सीधी चले ज़िन्दगी
कभी ये उलझाती खले ज़िन्दगी
लगे गीत सी तो कभी प्रीत सी
कभी हार सी ये कभी जीत सी

कभी चाँदनी सी सुहानी लगे
कभी रागिनी वो रुहानी लगे
लगे सावनी है घटा सी कभी
बसन्ती लगे ये छटा सी कभी

जुही की कली सी लगे रूपसी
कभी छाँव सी तो ,कभी धूप सी
कभी गंध मादक ,कभी छंद सी
लगे ज़िन्दगी फूल मकरन्द सी

रहा ज़िन्दगी का, यही फलसफा
कभी खुश लगी तो,कभी ये खफा
कभी ये रुलाये, हँसे ज़िन्दगी
सदा एक सी कब रहे ज़िन्दगी

रागिनी स्वर्णकार(शर्मा)
इंदौर

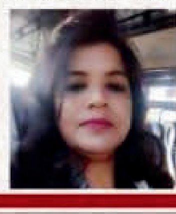

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का अंतरराष्ट्रीय मंच।

जीवन सत्व

ध्यान योग में स्थिर होकर, सुन ले अनाहत का नाद।

ध्यान योग में स्थिर होकर, सुन ले अनाहत का नाद,
खुद को तू पहचान पायेगा, चित-स्वरूप दर्शन के बाद।
आचार विचार, सृजन विनाश, सब देख रहा दृष्टा विराट,
शांत संन्नाटे गूंज ध्वनि में, सक्रिय सजग रहे दिन रात॥

ध्यान योग में स्थिर होकर, सुन ले अनाहत का नाद,
खुद को तू पहचान पायेगा, चित-स्वरूप दर्शन के बाद।

अ-स्थिर में कैसे स्थित, कोई कैसे हो सकता स्थिर,
अनुभव, सोच, बदलने वाले, आवेग, देह भी अ-स्थिर।
तुझको स्थित उसमें होना, जो स्थित, स्थिर खुद में हो,
देह में, मैं, ही अपरिवर्तित, तू इसमें स्थिर, स्थित हो॥

ध्यान योग में स्थिर होकर, सुन ले अनाहत का नाद,
खुद को तू पहचान पायेगा, चित-स्वरूप दर्शन के बाद।

मैं, पर कोई प्रश्न नहीं, यह ज्यों का त्यों रहने वाला,
इंद्रियों द्वारा विषय भोक्ता, ना देह में लिप्त होने वाला।
इंद्रियों के ना रहने पे भी, रहता जिसका अस्तित्व सदा,
मैं बोध ही, आत्म बोध, जो कभी मौत से नहीं बंधा॥

ध्यान योग में स्थिर होकर, सुन ले अनाहत का नाद,
खुद को तू पहचान पायेगा, चित-स्वरूप दर्शन के बाद।

मौत उसी की होती है, जो निराकार ना रहे यथा,
आकार परिवर्तन होना ही, जन्म मृत्यु का हेतु बड़ा।
एक रूप मिटा, एक रूप बना, मूल वहीं का वहीं रहा,
मैं, अजर अमर शाश्वत सत्य, देह बाद भी नित्य रहा॥

ध्यान योग में स्थिर होकर, सुन ले अनाहत का नाद,
खुद को तू पहचान पायेगा, चित-स्वरूप दर्शन के बाद।

ध्यान योग में स्थिर होकर, सुन ले अनाहत का नाद॥

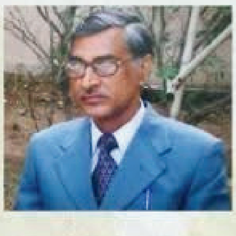

एल पी शर्मा "लक्ष्य"
जयपुर

नवगीत

मुँह चिढ़ाती
छद्म उत्सवधर्मिता
हर अभावों की गली के मोड़ पर

बेचने रिश्ते भरे बाज़ार में
शिष्ट उत्तरजीविता
लेकर खड़ी
आत्मज सम्पन्नता की होड़ में
भाँजते विश्वास की
टूटी छड़ी

एक गर्वित
आचरण की खोज में
हैं खड़े अवरोध सारे तोड़कर

सड़ गये रूमाल ढकते नाक को
जो स्वयं की
धृष्टता से कट गयी
किस जगह उल्लास का आसन सजे
जन्म की जाज़म
गली में फट गयी

क्यों बदलकर
साँस लेते शव हुए
देखते खुद को नहीं झिंझोड़ कर

स्वर्णमय इतिहास कह विरुदावली
मुग्ध होकर गा रहे
चारण सभी
मान्यताओं की परख करते हुए
कर न पाये
मूल्य निर्धारण कभी

रूढियों पर गर्व
करती पीढियाँ
अन्ध-श्रद्धा को अकेला छोडकर

जगदीश पंकज

बूढ़ा

दिल बूढ़ा नहीं होता शरीर हो जाता बूढ़ा
खुद को बूढ़ा कहलाने से कतराता बूढ़ा ।

बुढ़ापे में बचपन लग जाता फ़िर लौटने
बच्चे ही की तरह पेश आने लगता बूढ़ा।

अक्सर याद कर के अपनी जवानी के दिन
रह रह कर आहें सर्द खूब भरता रहता बूढ़ा।

झुंझलाता रहता बूढ़ाती अपनी जवानी पे
लेकिन बुढ़ापे को भला कैसे रोकता बूढ़ा।

जिया जाये अगर बुढ़ापे में सलीके से तो
आनन्द बुढ़ापे का भी उठा सकता बूढ़ा।

होता है ये बुढ़ापा एक वट वृक्ष की भांति
शीतल छाया का अहसास कराता बूढ़ा।

कोई भी घर का सदस्य जब मायूस होता
एक नई उमंग जोश उसमें भर देता बूढ़ा।

बूढ़े को होता काफ़ी तजुर्बा जिन्दगी का
मुनासिब सलाह तो सिर्फ़ दे सकता बूढ़ा।

फंस जाता है जब कोई किसी झमेले में
तरकीब निकल जाने की सुझाता बूढ़ा।

मोहताज़ होकर जब जाता पड़ खाट पे
आँखों में तब रह रह कर खटकता बूढ़ा।

कट जाता है बुढ़ापा उसका आराम से
सामंजस्य बिठाना जो सीख लेता बूढ़ा ।

ये जरूरी नहीं वक़्त पे ही आता बुढ़ापा
सूरत -ए-हालात भी कभी बनाता बूढ़ा।

बुढ़ापे से भला क्यों यूं खौफ खाया जाये
हर प्राणी दुनिया का वक्त पर होता बूढ़ा।

'बूढ़ा होगा तेरा बाप' ये कहते रहने वाला
मौत के आगे लाचार वो भी दिखता बूढ़ा।

रामकिशन शर्मा

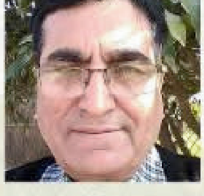

रिश्ते ही रिश्ते

रिश्ते
अब ओस जैसे हो गए हैं
कभी मोहब्बत-सी
बूँद-बूँद बनकर
चमकते हैं, चहकते हैं,
और किसी नम पल को
सहेज लेने की जिद करते हैं,

पर जुदाई का
ज़रा-सा ताप भी
उन्हें सूखा देता है।

कभी
हमने उतार फेंके
केंचुली की तरह
प्यार के रिश्ते,
और अब
वही रिश्ते
आँसुओं के साथ
चुपचाप रिसते रहते हैं।

फिर सोचता हूँ
निरर्थक रिश्तों से
वंचित रह जाने की
शिकायत भी कैसी?
जबकि मोहब्बत तो मुझे
अब भी है
उन अजनबी-सी राहों से,
जहाँ कोई बंधन नहीं,
बस चलना होता है।

एक दिन
प्रेम से भीगी भोर से
डूबते गुलाबी सूरज तक
जो वक़्त बीता,
उसने पाँव भारी कर दिए
उन उन्मुक्त, जवाँ दिलों के
और तब समझ आया,
अब रिश्ता
बस उम्मीद से रह गया है।

कहते हैं
शीशा और रिश्ता
दोनों नाज़ुक होते हैं,
पर फर्क इतना है कि
शीशा ग़लतफ़हमी से टूटता है,
और रिश्ता ग़लतफ़हमी में।

शायद इसीलिए
दर्द से रिश्ता बन जाता है,
क्योंकि मुस्कुराना
तो कहीं भी हो सकता है...

शायद इसीलिए
दर्द से रिश्ता बन जाता है,
क्योंकि मुस्कुराना
तो कहीं भी हो सकता है...

और रिश्ते,
ओस की तरह,
बस एक पल को चमककर
चुपचाप उतर जाते हैं।

मुकेश कुमार सिन्हा

संयोग

कभी राहों में यूँ ही मिल जाना,
क्या सच में था बस एक इत्तेफ़ाक़,
या वक्त ने चुपके से बुन डाली,
हमारी किस्मत की थी कोई खास दास्ताँ।

भीड़ में अनजान से चेहरे,
एक चेहरा अपना सा लग जाए,
नज़रें मिलते ही दिल कह उठे
"ये रिश्ता कुछ तो कह जाए।"

बिन वजह मुस्कान का आना,
बिन बात दिल का धड़क जाना,
क्या ये केवल संयोग भर है,
या रब का कोई पैगाम है पुराना?

कभी एक मोड़ पे ठहर जाना,
और वहीं किसी का मिल जाना,
जैसे सूनी सी इस दुनिया में,
रंगों का अचानक खिल जाना।

संयोग भी अजब कहानी है,
जिसमें छुपी हर एक रवानी है,
जो दिखता है इत्तेफ़ाक़ हमें,
शायद वो ही असली निशानी है।

तो मान लो इसे बस यूँ ही नहीं,
हर मिलन में कोई बात होती है,
इत्तेफ़ाक़ के इस खेल के पीछे,
किस्मत भी कुछ सपने संजोती है।

ऋतु कोचर,कटंगी

ये इत्तेफाक ही तो है

अमर होकर कोई नहीं आया
जो भी आया है, उसको जाना है।

भरी जवानी में मौत का आना
दुनिया वीरां किसी की हो जाना,
सर से साया पिता का उठ जाना,
दुनिया बेरंग किसी की हो जाना।
ग़म की बदली का यूँ बरस जाना,
खुशियों के लिए तरस जाना।

माना मौत को एक दिन तो आना है।
जो भी आया है, उसे जाना है।
अमर होकर कोई नहीं आया,
सबको एक दिन जहां से जाना है।

उम्र पूरी बिता चुके हैं जो,
फर्ज सारे निभा चुके हैं जो,
बेटे पोतों का सुख भी देख लिया,
दुख भी जीवन में बहुत भोग लिया,
अब लाचार पड़े हैं बिस्तर में,
गुहार कर रहे हैं ईश्वर से,
हे प्रभु हमको निज शरण में ले,
इस शरीर से अब हमें मुक्ति दे।

मौत माँगता ही रह गया वो तो,
मौत ले गई जवान सुत को।
दो मार्च का ही था वो दिन,
दबे पाँव मौत आई थी उस दिन।
आज तारीख मार्च दो ही तो है।
शायद ये इत्तेफाक ही तो है।

हाय रे मौत तूने ये क्या किया।
जवानी में पति को छीन लिया।
कितनों की खुशियों को निगल गई तू।
हमको भी साथ क्यों न ले गई तू?
ऐसा दिन न किसी को दिखलाना।
अब और कहर मत ढ़ाना।
बेटी के ग़म से चूर हो चुके हैं।
अब और नहीं तड़पाना।

राधा गोयल, विकासपुरी, दिल्ली

www.antrashabdshakti.com
संपादक : डॉ. प्रीति समकित सुराना
वारासिवनी (म.प्र.)

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
प्रकाशन एवं बहुद्देशीय संस्था

वेब अंक
शुक्रवार, 17 अप्रैल 2026

कभी कहा नहीं मैंने

कभी कहा नहीं मैंने तुम्हें
कि देख तुम्हें मन गा उठा,
सूने अंतर के उपवन में
कोई अनजाना राग उठा।

चुपके-चुपके जीवन में
तुमने खुशबू घोल दी,
सूखे पत्तों की सरसर में
कोई स्मृति अनमोल दी।

कभी कहा नहीं मैंने तुम्हें
कि तुम ही मेरा आधार बनों,
रेतीले पथ की प्यास लिए
आँखों के सघन कछार बनों।

तुम बिन मैं उस नैया-सी
जिसकी दिशा न धार रही,
मौन समंदर में डूबी
बिन पतवार मझधार रही।

कभी कहा नहीं मैंने तुम्हें
दो पल ठहरो, बात करो,
क्षण की इस बहती रेखा को
थोड़ा-सा विश्राम धरो।

कब साँझ ढली, कब रात उतरी
किसे खबर, किसने जाना,
समय हथेली से फिसल गया
और रह गया बस अफसाना।

कभी कहा नहीं मैंने तुम्हें
कि तुम बिन मैं अधूरी हूँ,
दिन सूरज बिन भी चलता है
रात बिना चंदा पूरी हूँ।

नीर बिना भी बदली ठहरे
रंग बिना भी तितली जिए,
कुछ अभावों के बीच-बीच
जीवन अपना अर्थ सिए।

पूजा गुप्ता
मिर्जापुर (उत्तर प्रदेश)

'मोबाइल एडिक्शन से बच्चों को बचाएं'

आज हमने साइंस और टेक्नोलॉजी की बदौलत बहुत तरक्की कर ली है और हम विकास की नई ऊंचाइयों को भी पार कर चुके हैं लेकिन इस तरक्की का दूसरा पहलू भी हमें जानने की, समझने की कोशिश करनी होंगी।

आज के इस अत्याधुनिक युग में जहां हम रोज नए प्रयोग और प्रयोजन में जुटे हुए हैं वहीं इन तकनीकों के दुष्परिणाम भी हमारे सामने आकर खडे हो गए हैं अब यदि मैं सोसल मीडिया कि बात करु तो जहां एक तरफ पूरी दुनियां हमें अपने मोबाइल में दिखाई दे जाती है वहीं दिन प्रतिदिन मोबाइल के प्रयोग के घातक परिणाम भी हमने देखे हैं।

आज छोटे छोटे बच्चे मोबाइल में इतने व्यस्त हो गए हैं कि अपनी सुद बुद ही खोते जा रहे हैं।

मोबाइल एडिक्शन नामक एक नई व घातक बिमारी सामने आकर खड़ी हो गई है। बच्चे आज इस मोबाइल एडिक्शन के जाल इस कदर फसते जा रहे हैं कि अपनी जान तक दांव पर लगा देते हैं। इसके जिम्मेदार है माता-पिता जो बच्चों को यह लत लगाने में खुद ही मददगार बन रहें हैं।

छोटे छोटे बच्चों को मोबाइल हाथ में थमा दिया जाता है ताकि बच्चा परेशान ना करें मैंने कई ऐसी सार्वजनिक जगहों पर देखा है जब माएं खुद अपने बच्चों को मोबाइल दे देती है ताकि बच्चा उन्हें परेशान ना करें और उन्हें किसी प्रकार की असुविधा ना हो ।लेकिन जब कुछ महीनों या कुछ सालों बाद वही बच्चा मोबाइल को ही अपनी दुनियां बना लेता है तो माता पिता परेशान होकर डाक्टर,हास्पिटल के चक्कर लगाने लगते हैं।

हर मां-बाप को यह समझना होगा कि बच्चों को आपके प्यार,दुलार, देखभाल की जरूरत होती है आपके साथ की जरूरत होती है। बच्चों को आउटडोर, इंडोर गेम्स सिखाइए और खुद भी उनके साथ खेलिए, आर्ट एंड क्राफ्ट, ड्राइंग, पेंटिंग, डांसिंग, सिंगिंग जैसी कई विधाएं हैं जिनसे बच्चों को जोड़कर मोबाइल कि इस शुरुआती बुरी आदत को छुड़ाया जा सकता है मगर शर्त यही है कि आपको अपने बच्चों को पूरा समय, संस्कार और अच्छी परवरिश देनी होगी।

आज मोबाइल एडिक्शन की समस्या एक गंभीर समस्या होती जा रही है और बहुत सारे माता-पिता एवं उनके बच्चे इस समस्या से ग्रस्त हैं, जूझ रहे हैं। लेकिन इस समस्या का समाधान भी सिर्फ माता-पिता के पास ही है यदि वे अपने कीमती समय में से कुछ समय अपने बच्चों के लिए निकल सके तो यह समस्या कभी किसी बच्चे के जीवन में आ ही नहीं सकती।

मोबाइल से तो बच्चों को हर हाल में दूर ही रखा जाना चाहिए क्योंकि इसके कई सारे साइड इफेक्ट्स हैं। न केवल बच्चे बल्कि बड़े भी मोबाइल के ज्यादा उपयोग के चलते कई समस्याओं का सामना कर रहे हैं।

मोबाइल रेडिएशन सभी के लिए काफी खतरनाक है और 5G के आने के बाद तो इसका खतरा और बढ़ चुका है मैं यह नहीं कहती कि मोबाइल का उपयोग बिलकुल बंद किया जाए लेकिन उसकी एक लिमिट होनी चाहिए।

यह एक प्रमाणिक तथ्य है की माता-पिता स्वयं जितने मोबाइल से दूर रहेंगे अपने बच्चों के उतने ही करीब रह पाएंगे और अपने बच्चों को भी इससे दूर रखने की कोशिश कर पाएंगे।

अभी भी समय है आओ हम प्रण करें कि अपने बच्चों को दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही इस मोबाइल एडिक्शन की समस्या से दूर रखने की पूरी पूरी कोशिश करेंगे।

मुक्ति भंडारी 'ममता'
पारा,जिला झाबुआ, मध्य प्रदेश

जहान में ऐसा मुकद्दर पाए हुए हैं।

रुतबे जो छोड़कर आए हुए हैं,
बेफ़िक्र वो उम्र के सताए हुए हैं।

ओढ़ ली है रात ने नींद की करवटें,
कि पूरा दिन वो सर पे उठाए हुए हैं।

हाथों की लकीरों में कुछ धुंधला सा है मगर,
वो अपने दिल में कुछ निशानी छिपाए हुए हैं।

फ़िक्र भी हो चली फिजाओं में घुलकर कहीं दूर,
वो गम-ए-दास्ताँ को अब भी दबाए हुए हैं।

कि आसां नहीं ये जिंदगी-ए-सफर,
वो इस मुकम्मल जहान में ऐसा मुकद्दर पाए हुए हैं।

ललितप्रसाद जोशी
छत्रपति संभाजीनगर
(महाराष्ट्र)

रूह

मोहब्बत में सुलगती रूह को सामाँ बना डाला
दिलों की इस पुरानी बस्ती को वीराँ बना डाला।

जो आँसू बह रहे थे आँख से, मोती हुए आख़िर
तुम्हारे इश्क़ ने इस दिल को ही तूफ़ाँ बना डाला

भटकती ज़िंदगी को अब किसी मंज़िल की चाहत क्या
तुम्हारे नक़्शे-ए-क़दमों को ही तो अब ईमाँ बना डाला

बिछड़ कर तुम से ज़िंदा हैं तो ये जादू है यादों का
कि हर इक साँस को जीने का ही अरमाँ बना डाला

वफ़ा की राह में जो काँच बिखरे थे यहाँ हर सू
उन्हें आँखों में रख कर राह को आसाँ बना डाला

बिछड़ कर वक़्त ने कमज़ोर समझा था तुझे दिव्या
मगर इस दर्द ने ही रूह को सुल्ताँ बना डाला।

दिव्या सिंह सिसोदिया

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का अंतरराष्ट्रीय मंच।

पचास साल वाला पिता

पचास साल वाला पिता
खुद तीन सौ वाला चश्मा पहनकर काम चलाता है,
लेकिन बड़ा खुश होता है जब बेटी या बेटा
"रे बैन" या लेंसकार्ट का पांच- सात हजार वाला लगाता है।

भले ही डॉक्टर/इंजीनियर बन चुका बेटा/बेटी
अपनी लाखों की सैलरी से न दे एक फूटी कौड़ी,
पिता फेसबुक और दोस्तों के सामने गिनाता फिरता
उसकी उपलब्धियां करके छाती चौड़ी।

चोरी छिपे अपने स्मार्ट/ब्यूटीफुल बच्चों की पिक शेयर करके
निहारता है लाइक-कमेंट्स, निहाल हुआ जाता है,
संतान जान न जाए शेयर की बात, इस डर से बेहाल हुआ जाता है।

वो जानता है कि बेटा पसंद नहीं करता, उसकी ये हरकतें
इसलिए छिप-छिपकर उसकी रईसी की तस्वीरें शेयर करता है,
अपने दोस्तों को बताता है
कि कैसे उन्होंने कल
बड़े रेस्तरां में 500 रुपए प्लेट वाली सब्जियां
और 250 रुपए पीस की रोटियां खाई थीं
सच तो ये है कि परोक्ष रूप से वह इनके माध्यम से
अपनी स्थिति मजबूत दिखाना चाहता है।

खूब समझता है वो उपेक्षा और झिड़कियां अपनी संतान की,
लेकिन दर्द दिल में दबाए पड़ा रहता है।
पर कोई कह दे लख्ते जिगर के खिलाफ
कुछ तो उत्तर बड़ा कड़ा देता है।

पता है उसे कि बुढ़ापा बड़ा कठिन गुजरने वाला है
लेकिन बाप है, उसे इससे क्या फर्क पड़ने वाला है।

शिखर चंद जैन

ग़ज़ल

आँखों में कोई उसके समन्दर ही नहीं था
या यूँ भी कहूँ मेरा मुकद्दर ही नहीं था

हिम्मत हो अगर तुम भी तो छू लोगे सितारे
दुनिया में अकेला वो सिकन्दर ही नहीं था

कहते हैं उसी मोड़ से बदलेंगी दिशायें
देखा जो वहाँ मील का पत्थर ही नहीं था

रहता था सनम जिसमें वो ऊँची थी हवेली
किस्मत में मिरे यार कोई घर ही नहीं था

यूँ ख़्वाब मुझे रात में आते हैं बहुत से
उनमें तो हसीं एक भी मंज़र ही नहीं था

सूरज से चलो पूछें बुलाया था वहाँ क्यों
शबनम के लिये दूब का बिस्तर ही नहीं था

ब्रह्मदेव बन्धु

आकलन का ठेका (व्यंग्य)

'आकलन' शब्द सुनते ही लगता है कि अब कोई हमें नापेगा, तौलेगा, परखेगा... और फिर अपनी राय देगा – जैसे तरबूज खरीदते समय दुकानदार ठोक-पीटकर देता है...!
फ़र्क बस इतना है कि तरबूज के भीतर मीठा निकले या फीका, ये तुरंत पता चल जाता है, पर इंसान का आकलन करने वाले अक्सर खुद ही खट्टे निकलते हैं।

आजकल आकलन एक फैशन है –
पड़ोसी आपका आकलन आपकी कार से,
रिश्तेदार आपकी जेब और आपकी आंखों से बहते आंसुओं से, सोसायटी आपके पहनावे से और फराटेदार अंग्रेजी से , कैसे बोल रहे , चल रहे या बैठ रहे हो ....बोले तो आपके पूरे चरित से, बॉस आपकी मुस्कान की चौड़ाई से,और स्कूल टीचर बच्चे की रिपोर्ट कार्ड से कर देते हैं।
सबको लगता है कि उनका आकलन एकदम सटीक है – जैसे उन्होंने मापने के लिए परमेश्वर से कोई सर्टीफीकेट मिला हो कि जा , आकलन कर... ठेका जो ले रखा है
पर सच्चाई ये है कि आकलन ज़्यादातर मनमाना होता है – आधी सुनी बात, आधी अपनी राय, और बाकी का जोड़-घटाव मूड पर निर्भर।
दरअसल, इंसान का सही आकलन करने के लिए उसकी जेब, दिल और दिमाग – तीनों खोलने पड़ते हैंऔर साहब, इतना खुलापन तो आजकल रिश्तों में भी नहीं मिलता, आकलन में तो भूल ही जाइए।😅

और तो और यह आकलन बड़ी अजीब शौक है, साहब। यह एक ऐसा चश्मा है जिसे हर कोई पहनकर घूम रहा है, और दुनिया को वैसे देख रहा है जैसे वो देखना चाहता है।
दूसरे का आकलन करते समय लोग इतनी गंभीरता से सिर हिलाते हैं, मानो अभी-अभी यूनिवर्सिटी से "मनोविज्ञान में नोबेल" लेकर आए हों।
आप मेहनत से काम करें तो आकलन होगा - "अरे, दिखावा कर रहा है"।
आप चुप रहें तो - "कुछ तो गड़बड़ है"।
हँसें तो - "ज्यादा खुश न हो, वक्त बदलते देर नहीं लगती"।
रो पड़ें तो - "कमज़ोर दिल का है"।
बोले तो, आपके हर भाव, हर चाल का ठेका इनके पास है, और इनका रिपोर्ट कार्ड पहले से तैयार है।
आकलन की सबसे बड़ी खूबी ये है कि यह करने वाले की योग्यता से कभी मापा नहीं जाता बल्कि जो खुद बिना पैमाने के हैं, वही आपको इंच-इंच नाप देते हैं।😅
सच तो यह है कि हमारे यहाँ आकलन अक्सर सच बताने के लिए नहीं,
बल्कि दूसरों को छोटा और खुद को बड़ा दिखाने के लिए किया जाता है।🙂↕️
और साहब, जब तक ये आदत है,
तब तक आकलन नहीं, अपितु एक तरह का 'राष्ट्रीय शौक' है –
जिसे छोड़ने का किसी का कोई इरादा भी नहीं है ...😅
आकलन का ठेका जो रखा है साहब...!

डॉ संगीता बिंदल
पूना, महाराष्ट्र

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का अंतरराष्ट्रीय मंच।

पांडेय जी की कारगुजारियां / लालित्य ललित

नमस्ते जी,कैसे हो! पांडेय जी ने अपने आपसे ही कहा।सुनकर मन प्रसन्न हुआ, पांडेय जी का दिल,और उन्हें दयाल बाबू की याद आई,वह भी इस लिए,जब दयाल बाबू किसी को फोन मिलाते है तो कहते है कि मैं दयाल बाबू जी बोल रहा हूं।

सुनकर पांडेय जी ने कहा कि एक बात बताइए,यह अपने नाम के साथ जी वाला संबोधन क्यों लगाते हैं!

शंकर भगवान की कसम दयाल बाबू ने कहा कि पांडेय जी अपन अपने नाम के साथ जी इसलिए लगाते हैं यदि कोई दूसरा ही सम्मान नहीं करेगा,तो अपन खुद ब खुद मरणासन्न की स्थिति में आ जाएंगे।बात सही भी है और हैरानी भरी,पांडेय जी सोचने लगे क्या होगा देश का और क्या होगा समाज का!

पांडेय जी सोचते सोचते सो गए और अचानक से क्रियेटिव हो गए।क्या लिखा उन्होंने,आइए आपको भी बता दें

दिल लगाना भी एक कला है / लालित्य ललित

आजकल संभल कर चलना
बिल्कुल वैसे ही है
जैसे सड़क बनी
मगर बरसात में बह गई
सोचिए आप उसमें बहे नहीं

संभल कर रखिए
अपने को
पता नहीं
कौन सी बरसात में रपट जाएं
कहा नहीं जा सकता

आसमान फिर गरजा
लोग डर कर दुबुक गए
कहने लगें
इसी में भलाई है

कोई प्रवचन सुनने निकल गया
कोई प्रपंच करने

किस को
किस से फायदा होगा
कहना मुश्किल

समझें।

जिसने दिल लगाया
वह जमा पूंजी हार गया
जिसने दिल से कमाया
वह इज्जत कमा गया
उसका धंधा रोजगार अच्छा चल रहा है

सार
यह कहता है
जो करो उसमें पूरी मेहनत हो
दिल हो और इश्क अपने आप से ही हो जाएगा

तभी पांडेय जी की आंख खुली तो दिन ढल गया था और रामप्यारी किचेन में भोजन बनाने में व्यस्त थीं,तभी चीकू ने कहा पप्पा जी,किसी दिन अल कुरेशी पर चलेंगे,खाना खाने,बहुत दिन हुए..पांडेय जी ने हामी भरी,चैलेंज स्वीकार किया,चलेंगे किसी दिन।

अचानक से पांडेय जी को रांची निकलना पड़ा और उसके आगे कोई अनजान सा जिला,रामगढ़।

तभी शाम को पांडेय जी को चीकू का वीडियो मिला,वह शाम के डिनर का था और पांडेय जी की मनपसंद चीजों से भरा हुआ था,अब पांडेय जी क्या कहते! एंजॉय का इमोजी बनाया और काम में लग गए।

सोचने लगे,दुनिया का दस्तूर है सहाब,जिसका काम चलते रहना। पांडेय जी को पता चला कि आज कृष्ण भगवन का अवतरण दिवस है,बस फिर क्या आधुनिक लोग लोगों से मिलने के बजाए मोबाइल पर ही बधाई संदेश देना पसंद करते है,कोई सुख हो,दुख हो,दे संदेश और ले संदेश।मानो संदेश देने के बाद उनके जीवन की सार्थकता संपन्न हो गई हो।

दुनिया के मेले और उनके ठेले भी अलग अलग किसिम के है,कहीं किसी थैले में आर्थिक मंदी का बोझा साफ़ दिखाई देता है और कहीं भ्रष्टाचार हंसता हुआ कुलांचे भरता हुआ दौड़ जाता है और बारिश की चपेट में आए लोगों को छींटे मारता हुआ मुस्कुराता है, संभल कर और संभाल कर रखने की बेहद आवश्यकता है,समझ जाए तो वह समझदार अन्यथा मूर्खों और लापरवाहों से देश क्या दुनिया भरी पड़ी है साहब।

ऐसे ही पांडेय जी ने बाजार में एक बुजुर्ग को देखा, कि वह सामान से लदा फदा है और चल भी नहीं पा रहा।पांडे जी बेशक दूर थे,पर उनके शब्द उनके दिल के करीब थे।

उनका दिमाग कुछ सोचने लगा और देखिए क्या सोचा:

एक बुजुर्ग :पांच रंग / लालित्य ललित

डॉ लालित्य ललित

(1) वह सोचता है
जब वह बुजुर्ग होगा
तब वह अधिकांश समय अपने पोते पोतियों के साथ बिताएगा
अक्सर इस तरह की बातें
उस उम्र के लोगों का शगल मेला होता है
लेकिन घर के लोग
उसे अनुपयोगी वस्तु के अतिरिक्त कुछ नहीं समझते
वह सोचता है और सोचते ही रह जाता है
उसकी मन पसंद खाने पीने की चीजें अब केवल स्वप्न बन कर रह जाती है
जब से उसकी पत्नी कौशल्या क्या गई
उसी दिन से उसका स्वाद भी चला गया
उसकी परवाह करने वाला भी नहीं रहा घर में कोई

(2) वह सैर करता है
अपने उम्र दराज लोगों से बतियाता है
कुछ दुख की और सुख की
अपने काम धंधे की भी
अपनी जवानी के किस्से भी साझा
करता है
बातचीत में कभी बच्चा भी बन जाता है

(3) एक बुजुर्ग सैर करता है
आते समय घर के लिए
दूध लेता हुआ घर पहुंचता है
घर आते ही देखता है
घर सो रहा है
बच्चा जिसे स्कूल जाना है वह भी
उठाता है उसे
जल्दी में वह कभी पेस्ट करना भूलता है
तो कभी टाई लगाना

(4) आज घर में वह बुजुर्ग नहीं है
कहां गया
पता नहीं
कल बेटे ने डांट दिया था
शहर का नेफ्रोलॉजिस्ट था
अक्सर बाप बेटे में मन भेद की बातें
होती थीं
उस दिन कुछ ज्यादा हो गई
बाप घर से निकल गया
तीन दिन सैर करने भी नहीं गया
सैर के साथी घर पहुंचे
पता चला
नेफ्रोलॉजिस्ट को गांव के साथी मित्र जो
पिता के गहरे वाले दोस्त थे
कि उसने एक किडनी बेच कर उसे
डॉक्टर बनाया था
आज वही पिता चला गया
हमेशा के लिए।

(5) घर का मुखिया
नहीं रहा
अब उस घर से कोई सैर नहीं जाता
कोई दूध भी
स्थितियां बदल गई है
बच्चा उठने लगा है
समय पर स्कूल जाना सीख गया है
क्या किसी के न रहने पर ही इंसान
अपना दायित्व समझता है!
जरा सोचिएगा!!

तभी फलाने जी ने फोन कर उनकी तंद्रा को भंग कर दिया।क्या हाल है पांडेय जी!

पांडेय जी ने कहा वैसे तो सब ठीक है,सोच रहा हूं कि कुछ दिन पहाड़ों की ओर चला जाऊं।

फलाने जी ने कहा आपका विचार तो अच्छा है!

क्या अकेले जाएंगे! या परिवार! भी?

पांडेय जी ने कहा कि कई बार सेमिनार के सिलसिले में अगर जाना हो तो परिवार संभव नहीं होता,लेकिन परिवार के साथ जाने में आनंद तो है ही,अच्छा करते है आप।

चलिए मिलता हूं पत्नी ने बेसन लाने के लिए भेजा था और मैं आपको देख कर रुक गया। पांडेय जी सोचने लगे कैसे कैसे केरेक्टर है,जाना कहीं होता है और ब्लेम हमें लगाते है,अजब तमाशा है।

पांडेय जी अपने दफ्तर में कामों मसरूफ थे,पिछले दिनों वे रांची के सुदूर जिले रामगढ़ में हो कर आए थे,किसी मित्र ने बुलाया था और बड़े सम्मान से इज्जत बख्शी थीं,तो विलायती राम पांडेय उन्हें मना नहीं कर पाए।

अब दिल्ली लौटे तो खबर आई कि जिस भित्ति चित्र को देखने वे आदिवासी इलाके में गए थे,वहां बाइस जंगली हाथियों ने आदिवासी बस्ती में खुराफात की, पांडेय जी सोचने लगे,अच्छा हुआ अपन वापस लौट आए,क्या पता उनके भोजन का आहार बन जाते!

बहरहाल बारिश अपने यौवन पर थी,यहां भी और दिल्ली में भी। पांडेय जी सोचने लगे कि ये प्यार ही है जो कहां से कहां की यात्रा करा देता है!

पांडेय जी ने प्रण ने लिया था कि बारिश के दिनों में गाड़ी नहीं चलाएंगे,बल्कि मैट्रो की सवारी करेंगे,मन तो बना लिया था,पर मैट्रो भी आजकल ऐसे चलने लगीं है जैसे केशो पुर सब्जी मंडी की।भीड़ ऐसी की बिना प्रेस की शर्ट प्रेस हो जाएं,इसलिए सोचते है कि कहां से आते है ये लोग! और कहां जाते है!

आजकल स्टेशन हो या हवाई अड्डे,सबकी शक्ल एक जैसी बनी हुई है।कितना पैसा है लोगों के पास! घटने का नाम ही नहीं लेता।

अब देखो न गैंदा मल कलसी मुंबई में है और अपना पीसा खर्च करके मॉरिशस से चुप्पी प्रसाद भट्ट लौट आएं है,किसी ने घास नहीं डाली।आखिर क्यों डालेंगे! सब बेपैंदी के लौटे है,अपनी डफली और अपना राग।

पांडेय जी ने भी मन बना लिया था कि जितना जल्दी अपने से स्वार्थी लोगों को दूर किया जाएं,उतना ही अच्छा है,ऐसा करने से आप अपने कार्योंको पूरी ऊर्जा से कर पाते है,जैसे कांटा डाल लिया करते है लोग बिजली की तारों में,उनकी धर पकड़ होनी ही चाहिए।तभी तो बिजली विभाग को राजस्व मिलेगा।

सोचते सोचते सो गए अपने पांडेय जी,देविका गजोधर की बाहों में।आखिर मनुष्य कितना अबोध है कितना कुछ सोचता है और काल्पनिक दुनिया में गोते लगाता है,जबकि हकीकत में दुनियावी हलचलों से दूर रहने का प्रयास करता है,वाह री दुनिया और वाह री कागजी शेरों की कल्पनाएं।

सोते सोते भी पांडेय जी सोचते रहते है कि जो किस्मत में होगा,वह तो मिलेगा ही और जो नहीं मिलेगा,उसके बारे में क्या सोचना।क्योंकि अपने पांडेय जी पॉजिटिव सोच वाले दमदार व्यक्ति है,समझ रहे हो न बाबू मोशाय!

और जब अच्छे से समझ लोगे न कहे देते है इश्क हो जाएगा,उनसे अल्ला कसम।

तभी रामप्यारी ने उठा दिया,उठिए चीकू के पापा,काहे बैठक में सो गए,जाइए अपने कमरे में सोइए,क्या बैठक सोने की जगह है!

बेचारे पांडेय जी भारतीय पति उठे और चुपचाप साइलेंट मॉड पर जागे और अपने कमरे मे जाते ही निंद्रा देवी को आगोश में कर सो गए,रामप्यारी ने देखा और फ्लाइंग किस्स देते हुए मुस्कुराती हुई सुबह की तैयारी में किचेन में चली गई,नहीं तो सैर से वापसी में पांडेय जी सवाल दाग देते,आज क्या बनाया खाने में अन्नपूर्णा जी!

सम्पर्क:- डॉ लालित्य ललित || बी 3/43,शकुंतला भवन, पश्चिम विहार, नई दिल्ली

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का अंतरराष्ट्रीय मंच।

मुझे बचे रहने दो

मरुधर में उगने वाले रूंख से
मन में पलती परवाह
पूछती है

जब कोई चिड़िया
तुम्हारी शाख पर
अलस पंख छोड़ जाती है
तब तुम चिंतित होते हो क्या?
पाखी वापस लौट आए
हे तरु तुम बाट जोते हो क्या?

या फिर तुम कुमलाते हो
समर की धूप में
तनिक कुछ अधिक ही

पेड़ कहता है
हालांकि हरेपन की
अनुपस्थिति
मेरे भीतर
विचलन को बढ़ाती है

पर जब मुझ पर
खग विहग आश्रय
नहीं पाते हैं
मेरे प्रथम फल
तोते नहीं खाते हैं
मकरंद पर तितलियां
भंवरे नहीं आते हैं

तो मैं उदासीन
हो जाता हूं
तब मैं झर जाता हूं
तब मैं खर जाता हूं

फिर किसी दिन
तुम उधर से गुजरते हो
मेरे ठूंठ होने का
सबब पूछने लगते हो

क्या जवाब दूं मैं
सिवाय इसके

मुझे बचे रहने दो
मुझे पोषित करो
मुझे खिलने दो
कितनों का
मैं शरणगाह हूं

मुझे बचे रहने दो
मैं हूं तो
तो बचे रह जायेंगे
चिड़ियां,खग विहग भी
मैं हूं तो
बचे रह जायेंगे
लोक में तुम्हारे
सुकुमार मन भी
मैं हूं तो
बचे रह जायेंगे
तमाम उछब प्रति पल भी

जीनस कंवर

शब्दकोष

जिंदगी की वेदनाओं को
परिभाषित करने की चाह में
खंगाल लिए है कई शब्दकोश।
मातृभाषा की पांडुलिपि से इतर भी देखा अक़्सर
नही मिलती परफेक्ट परिभाषा इन पर..

संगीत में खोजा, हर राग पर गुनगुना कर देखा
नही बन पाई कोई एक धुन सलीकेदार
हाँफते हाँफते थक गई मैं
गला रुंधा कई बार, सुनो फिर भी नही बन सकी
उसे परिभाषित करती रागिनी..

आयते पढ़ी, गीता में भी ढूंढा, रामायण के साथ
महाभारत की गाथा पढ़ी
पर सुनो व्यथा ,वेदनाओं की परिभाषा
हर बार अलग ही मिली..

आँसुओं में महसूस किया
अट्टहास में भी, चीत्कार में ढूंढा
इंतज़ार को सहेजा, प्रेम को पुकारा
पर व्यथा वेदना नफ़रत में भी नही मिली..
बस जिंदगी की वेदनाओं को परिभाषित
करने को ढूंढ रही हूँ एक अलहदा पांडुलिपि का
वृहद शब्दकोष...

स्वरा

गीतों की लय

गीतों की लय में जीवन है, इस लय में खो जाने दो,
गीत सत्य है शिव सुन्दर है, ये सबको समझाने दो।

गीतों में है वेद ऋचाये, गीतों में उपनिषद समाये,
तानसेन ने गीतों को स्वर, देकर ही मेघा बरसाए।
मेरा मन है बैजू बावरा, गीतों में बस जाने दो।
गीत सत्य है शिव सुन्दर है, ये सबको समझाने दो।

कोमल अहसासों को गाऊँ, खुशियाँ गम और प्यार लिखूँ,
धरती अंबर तारे चंदा, मुस्काता संसार लिखूँ।
वक़्त कि आंधी बुझा ना पाये, गीत के दीप जलाने दो।
गीत सत्य है शिव सुन्दर है, ये सबको समझाने दो।

चंचल मन गंगा सा निर्मल, झर झर अमृत रस झरना,
प्रीत प्यार की चंचल लहरें, फिर गम से कैसा डरना।
इक तूफान रुका है मन में, गीतों में खो जाने दो।
गीत सत्य है शिव सुन्दर है, ये सबको समझाने दो।

अलका चौधरी
'अनमोल'

कविता

है अगर मुमकिन तो साथ दीजिए,
रूठे हैं अगर कोई तो बात कीजिए।

यहाँ हर शख़्स बेवजह परेशान सा रहता है,
किसी की थोड़ी परेशानियाँ तो हल कीजिए।

मैं, मेरा, मुझे यह सिर्फ उलझन ही तो है,
यह जो वहम है उसे कभी मिटा तो दीजिए।

हर कोई यहाँ हर साँस का गुलाम है,
कभी उसे भी एक दरख्त सी छाँव तो दीजिए।

मुझसे बेहतर कोई नहीं है इस जहाँ में,
मेरे कहने से बस एक बार आईना देख लीजिए।

हर कोई यहाँ मगरूर नहीं होता,
कभी तो उसे समझने की कोशिश कीजिए।

यह लेन-देन का दौर बहुत बुरा है "सपना",
बहुत सोच समझ कर ये सौदा कीजिए।

सपना परिहार

आख़िरी तारीख़ का इंतज़ार

लास्ट-डेट यानि आख़िरी तारीख़ से मुझे बेहद मोह है। हर काम करने के लिए मैं इसका रास्ता देखता हूँ। यह मेरी सोई हुई चेतना की कुंडलिनी को झंझोड़ कर जाग्रत कर देती है। आख़िरी तारीख़ के दिन मैं आदमी से मशीन हो जाता हूँ और महीनों का काम कुछ घंटों में समाप्त कर डालता हूँ। लगभग मेरी तरह सभी की यही स्थिति है। हमारी क्षमता, प्रतिभा और योग्यता का सही आकलन आख़िरी तारीख़ को ही होता है, हमारे राम नाम सत् हो जाने के बाद। मुए लोग, इसके पहले कभी इतने प्रेम-विभोर भी नहीं होते।

महीने की पहली और आख़िरी तारीख़ का माहात्म्य तो प्राथमिक शाला में ज्ञान प्राप्त करते-करते ही मुझे सुनने मिला था, किन्तु आख़िरी तारीख़ कभी भी आ जाएगी यह बोध वर्षों बाद प्राप्त हुआ। उस दिन हायर सेकेण्डरी परीक्षा के फॉर्म भरे जा रहे थे। हमें गुरुजनों ने कांजी हाउसनुमा हाल में बैठा कर फॉर्म दे दिया था। गुरूजी फॉर्म पढ़ रहे थे और रिक्त स्थान भरने का निर्देश दे रहे थे। चार-छः गुरुजन टहल रहे थे और हमारा फॉर्म भरना देख रहे थे। फॉर्म भर गए तो गुरुजनों ने फटाफट जाँच कर ली। फीस वसूल ली। सीलें लगा दीं। बंडल बना दिया और शिक्षा मंडल को भिजवा दिया। प्राचार्य बेहद ख़ुश थे कि आख़िरी तारीख़ का सारा काम निपट गया। तब से मैं इतना लतियल हो गया हूँ कि आख़िरी तारीख़ का इंतज़ार करता रहता हूँ। भाई लोग, आख़िरी तारीख़ तो क्या आख़िरी क्षण तक का इंतज़ार करते रहते हैं और फिर ताबड़तोड़ काम शुरू करते हैं गोया काम विधानसभा का प्रश्न हो गया हो।

नई पीढ़ी आख़िरी तारीख़ की गुलाम ही बन गई है। दफ़्तरों में, प्रतियोगी परीक्षाओं के पचहत्तर प्रतिशत आवेदन पत्र आख़िरी तारीख़ को ही आते हैं। हमारी इस मानसिक प्रतिबद्धता का फ़ायदा उठा कर कुछ लोग आख़िरी तारीख़ के बाद विलम्ब शुल्क ले कर एक मौक़ा और देते हैं। इसकी भी एक आख़िरी तारीख़ होती है। यक़ीन कीजिए, विलम्ब से आने वाले अधिकतर आवेदन भी इसकी आख़िरी तारीख़ को आते हैं। ग़नीमत है आख़िरी तारीख़ के बहाने लोग इतना तो कर लेते हैं।

आख़िरी तारीख़ छात्रों को क्रान्तिकारी और दूरदर्शी बनाती है। विश्वविद्यालयीन परीक्षाओं और छात्रों में साँप-नेवला संबंध होता है। छात्र सारे साल विविध गतिविधियाँ चलाते रहते हैं। शिक्षा का 'वन-डे' में अचार और मुरब्बा बनाने वाले प्रकाशक और पुस्तक विक्रेता भी इसी आख़िरी तारीख़ की टोह में लगे रहते हैं और मार्च-अप्रैल के महीने में नेपा मिल के उत्पादन को काला कर क़िताबों के नाम पर बेच देते हैं। परीक्षा घोषणा के बाद छात्र इन टीकाओं को रटते हैं। तब उन्हें बोध मिलता है - "शिक्षकों ने सारे साल मटरगश्ती मारी, पढ़ाया ही नहीं। एक-दो नासमझ रंगरूटों ने पढ़ाया भी तो कोर्स पूरा नहीं किया। किसी ने कोर्स पूरा कर भी दिया तो हमारे पल्ले क्या पड़ा? वे जागरुक बन कर माँग करने लगते हैं परीक्षा-तिथि आगे बढ़ाओ, अतिरिक्त कक्षाएँ लगाओ, कोर्स पूरा करो। पेपर देने की तारीख़ नहीं होती तो उन्हें पता ही नहीं चलता कि उनके पेपर क्या-क्या हैं! क़िताबें उन्हें भ्रम लगतीं और गुरु गोरख धंधा लगते। क़िताबों को झाड़ने का दुर्लभ अवसर भी उन्हें नहीं मिलता।

सरकारी तंत्र की आख़िरी तारीख़ मार्च के इकत्तीसवें दिन आती है। सभी सरकारी कर्मचारियों में उस दिन ग्लूकोज चढ़ जाता है। चार-छः दिन में सारे साल की ख़रीद-फ़रोख्त हो जाती है और आटे-दाल का वार्षिक गणित हल हो जाता है। शेष सारे साल चाय-पानी की फ़िक्र में बंधुगण कुर्सियों को जलाऊ लकड़ी बनाते रहते हैं।

आख़िरी तारीख़ हमारी पहली सामाजिक आवश्यकता है। 'आने दो आख़िरी तारीख़, तब देख लेंगे' का खुला चैलेंज दे कर हम आख़िरी तारीख़ के सामने घुटने टेक देते हैं। आख़िरी तारीख़ न होती तो हम बिजली के बिलों का भुगतान नहीं कर पाते और विद्युत विभाग का फ्यूज उड़ा देते। नल के बिल पी जाते और बीमे की किस्त से पान-सिगरेट का हिसाब कर देते। आख़िरी तारीख़ का यह उन्माद सिर्फ़ निम्न या मध्यम वर्ग में हो ऐसी बात नहीं है।

उच्च-मध्यम वर्ग और उच्च वर्ग में आख़िरी तारीख़ का जश्न ही निराला है। आख़िरी तारीख़ इनके लिए जन्म और मरण का पैगाम ले कर आती है। उस दिन इनके खटारे पंखे भी फुल-स्पीड पर चलते हैं। तरह-तरह के टैक्स भरने, काले को सफ़ेद और सफ़ेद को विदेशी करने में आख़िरी तारीख़ का क्षण-क्षण सार्थक हो जाता है। आख़िरी तारीख़ को इन्हें न भूख लगती है न प्यास। ये अपने ही ब्रह्मानंद में स्वीमिंग पूल का मजा लेते रहते हैं।

आख़िरी तारीख़ अपनी अदाकारी चुनावों में भी बताती है। चुनाव पूर्व अधिकृत उम्मीदवार बनने के लिए दिल्ली-दरबार में जमघट लग जाता है। जादूगर अपने जमूरों समेत डेरे तंबू गाड़ लेते हैं। एक टिकट के म्यान में कई उम्मीदवारों की तलवारें घुस जाती हैं। नामांकन की आख़िरी तारीख़ के समीप आते ही पार्टी-कार्यालय हल्दी घाटी बन जाता है। मुझे लगता है चुनाव की तमाम प्रक्रियाओं के लिए चुनाव आयोग कोई आख़िरी तारीख़ तय न करे तो इस देश में कभी चुनाव ही न हो और टिकटाकांक्षी दिल्ली में शरणार्थियों की एक नई बस्ती बना लें।

मैंने कई आख़िरी तारीखों पर मिन्नतें की हैं कि बस वह एक दिन चौबीस घंटों की बजाय सौ-दो सौ घंटों का हो जाए। दफ़्तर छः-सात घंटे के बजाय पचास-पचपन घंटे खुलें। शरीर और दिमाग़ ऐसे चले जैसे कम्प्यूटर चलता है। पर ऐसा हो जाए तो भी हम नहीं सुधरेंगे। हम तब आख़िरी तारीख़ की बजाय आख़िरी मिनटों की प्रतीक्षा करेंगे। जैसे आज भी ट्रेन रवाना होने वाली होगी तो स्टेशन पहुँचेंगे, बैंक काउंटर बंद कर देंगे तो रुपया लेने पहुँचेंगे और मरने वाले होंगे तो डॉक्टर को बुला कर उसकी फजीहत कर जाएँगे।

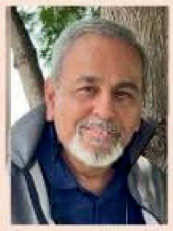

धर्मपाल महेंद्र जैन
टोरंटो (कनाडा)

कविता

गांव की मिट्टी में शोधी महक है।
पेड के है छांव चिडियो की चहक है।
संस्कारो से अभिसिंचित लोग है।
कार्य मे मिश्रित यहां पर योग है।
सादगी है मूलता है न बनावट,
मिल रहे है प्रेम से न है अदावत।
बोलियो मे अजब सी मिठास है,
गांव की मिट्टी जरा कुछ खास है।
प्राकृतिक हवा पानी शुद्ध है
कम है कीमत बस्तु की दर हाफ है।
मिलकर रहते कुटुम इकसाथ है
मेहनत होती है यहां दिन रात है
कदम दर कदम बडो की सलाह
काश मिल जाता पुराना गांव नीम की छांह
शोधी महक मिट्टी की गांव मे बुलाती है
याद आती गांव की आंखे भर आती है
समाज है मिलकर मदद करता यहां
ढूंढता गांव सा मिलता कहां है।
आम पीपल नीम की घनी छांव मे
खेलते थे दिन दिन कई जब गांव मे
टूटे खिलौने से ही मिल जाती खुशी थी
आज वैसी खुशी मिलती नही है।
धन्न तो मिलजाता कृत्रिमता नगर मे
जहर है प्रदूषण बचकर रहो शहर मे।

विन्ध्य प्रकाश मिश्र
हिंदी शिक्षक

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का अंतरराष्ट्रीय मंच।

टिश्यू पेपर

समय इक टिश्यू पेपर की तरह
जेहन की थकान, दाग धब्बे, नमी को पोंछता
उनकी पुरानी सिलवटे साफ करता
यकीनन वह हरकारा नही , कि
आवाज देने से पास आ जाये

कभी सुदूर देश का कोई पथिक सिर्फ
आहट दे कर बगल से गुजर जाये

कभी वह माँ के मीठे किस्से गुनता
कभी दोस्त बन यकीं दिलाता
कभी दरवेश बन धूनीं रमाता
कभी बैरागी सा वन वन भटकता

मेरे चेहरे पर कभी गर्द बन ठहर जाता
कभी रौशनीं तो कभी सहर बन उग आता
कभी अपनें घेरे में कफस की तरह श्वाँस लेता
कभी चट्टान सा अचल , अडिग हो जाता

मैं बार बार उसे हमराह समझ राह देती
वह निश्छल जल की धारा सा प्रवाहमान रहता
ना किसी असीमित बाँध सा वह बरबस टूट जाये
ना बारिश सा बरस जाये

इक करारनामा हो आपसी प्रेम का
इक सफर हो दूरतलक साथ चलनें का
रहबर का पासबाँ हो
ना रेत सा कोई ढूह बिखर जाये
ना किसी अनजान साहिल
पर वह गुम हो जाये।

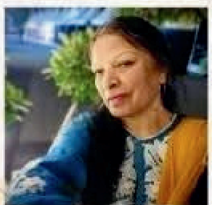

नीना सिन्हा

जो छूटा था पा कर देखो।

जो छूटा था पा कर देखो।
लौट गांव तुम जाकर देखो।

जो रूठे हैं, क्या अपने हैं?
उनको गले लगा कर देखो।

त्यौहारों में घर का मतलब,
स्टेशन पर जा कर देखो।

कभी किसी भूखे को अपनी,
रोटी एक खिला कर देखो।

कभी कभी यूँ ही राहों में,
मन अपना बहका कर देखो।

जो भी जैसी मिली ज़िन्दगी,
उसका साथ निभा कर देखो।

अपनों को अपनाना है तो,
बीती बात भुला कर देखो।

श्वेता राय

स्कूल चलें हम

चलो चलें स्कूल चलें हम,
पथ के कंटक भूल चलें हम,
पढ़ना लिखना काम हमारा
भले उड़ाते धूल चलें हम,,,
चलो चलें स्कूल चलें हम,,,,!!

जीवन को है सफल बनाना,
विद्या धन है हमें कमाना,
करेंगे हम नहीं कोई बहाना,
निकाल पग के सूल चलें हम,,,
चलो चलें स्कूल चलें हम,,,,!!

पढ़ लिखकर है आगे बढ़ना,
माता पिता की सेवा करना,
देश की खातिर जान से लड़ना,
नींद त्याग को भूल चलें हम,,
चलो चलें स्कूल चलें हम,,,,!!

आनंद पाण्डेय "केवल"

नासमझ

समझदारी की कोई उम्र नहीं होती,
पर हम सबने उसे एक सांचे में ढाल दिया है।

तभी तो वह हैरान और परेशान,
नासमझी को देखती हुई,
धीरे से बुदबुदाती है -
मुझसे बेवजह इतनी उम्मीदें क्यों है सबको?

मैं भी चाहती हूँ
बादलों का झूला झूलना,
इच्छाधारी नागिन बनकर
मनचाही दुनिया में घूमना।

क्या संभव है,
क्या असंभव
मैं खुद
इन सीमाओं के पार जाना चाहती हूँ।

जब देखो झूठ-मूठ मेरे नाम का तगमा
हर बच्चे के गले में क्यों डाल दिया जाता है ?

अगर जीवन जीने में मेरा होना जरूरी है,
तो फिर मरने में क्यों नहीं?

ओह! खामखाह मत पड़ो मेरे पीछे
मैं भी नासमझ ही हूँ
और वही रहना चाहती हूँ ।
जबरदस्ती- अपनी खुशी के लिए
मेरे आगे कोई उदाहरण मत रखो,
मुझे कोई शाबाशी नहीं चाहिए।

रश्मि प्रभा

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का अंतरराष्ट्रीय मंच।

बहुत हो चुका अत्याचार

शोषण मानसिक, शारीरिक
हिंसा, उत्पीड़न,
अब बस नहीं सहना खामोश
आँसू बहा समझ खुद को
कमज़ोर, अबला, हाय बेचारी
रुदन नहीं, हुंकार चाहिए।

महिषासुर हैं चहुँ ओर
अब काली सी ललकार चाहिए
करना होगा वार हर दरिंदे पर
बचा स्वाभिमान अपना
नहीं आने देनी आंच अपनी इज़्ज़त पर,
न ही होना पीड़ित सह मार, गाली गलौच
बस अब लेना है प्रतिशोध।

बन माँ काली, माँ दुर्गा हर महिषासुर से
तभी रह पाएंगी सुरक्षित
बहन, बेटियां, बहू, पत्नी
जब आवाज़ अपनी उठाएगी हो निडर।

मीनाक्षी सुकुमारन
नोएडा

ग़ज़ल

बहुत अरसे से हूं बेताब देखने के लिए
मैं जागता हूँ तिरा ख़्वाब देखने के लिए

तेरे दिए गुलाब छुपा रक्खे हैं जहां मैंने
दिल करता है वो किताब देखने के लिए

हो सके तो तुम आ जाना कोई बहाने से
यूं दिल दरिया का सैलाब देखने के लिए

घर मेरा भी हो जाएगा इक दिन रोशन
छत पे आ जाना महताब देखने के लिए

आस के फूलो से सजायी है जो बगिया
सींच देना इस को शादाब देखने के लिए

घूम रहा हूं मैं कई सवालात के जंगल में
जिंदा हूं अरसे से जवाब देखने के लिए

मेरे मुल्क में छाया हुआ अंधेरा ही अंधेरा
तरसते हैं सभी आफताब देखने के लिए।

श्याम कौशिक

समझ लो

ज़रा ठहरो यहाँ मसला समझ लो
नहीं सबको यहाँ अपना समझ लो

बहुत मुमक़िन मिले तुम को दग़ा फिर
यहाँ सच है कहाँ कितना समझ लो

बहुत गहरी नदी की शख़्सियत है
इसे पूरा नहीं आधा समझ लो

न देखो तुम हमें गहराइयों से
हमारे अश्क का किस्सा समझ लो

छलकने तुम नहीं देना इन्हें यूँ
यहाँ है दर्द क्यों गहरा समझ लो

समझ लो ज़िन्दगी की राज़दारी
समय के खेल का पासा समझ लो

ज़रा रुकना कदम रखने से पहले
नये इस मोड़ पर रस्ता समझ लो

नीता सक्सेना

मोक्ष-बंधन

सांझ के धुंधलके में दुनिया से छुपकर वह शहर से बाहर स्थित विश्राम-गृह में प्रवेश की। वहाँ की भव्यता देख सेमली को अंदाज हो गया कि साहेब पैसेवाला है! श्याम-कमनीय गात, खंजन- नैन और चेहरे के भोलेपन ने साहब पर जादू कर दिया,उनके मन में कुछ होने लगा। अपने करीब बिठा उसके घुँघराले लट सहलाते हुए साहब ने पूछा,

"कब से यह धंधा कर रही हो?"

"जी, वो...वो आज पहली बार...दू हजार रुपया का बहुत जरूरत था तो..." उसने हकलाते हुए जवाब दिया।

"मतलब...?"साहब की आवाज में आश्चर्यमिश्रित प्रसन्नता थी।

"मेरा मरद शादी करके बाहर कमाने गया, फिर कभी लौटा नहीं।"

"कितने साल हो गये?"

" दस- ग्यारह बरस का बेटा है, बाप- बेटे ने कभी एक- दूसरे को देखा ही नहीं ..." थरथराकर सेमली ने कहा।

आगे वह कह रही थी,

" पितरपख है न! पंडी जी बोले है कि इतने बरस नहीं आने से आदमी को मरा मान,उसका तर्पण करना होता है, तभी उसकी मुक्ति होगी।" वह सिसक पड़ी।

पितरपख, पंडी जी, तर्पण, मुक्ति....साहब को अचानक लगा कि दु:खी सेमली के पास कोई खड़ा है....शायद... उसका मरद! साहब को झुरझुरी सी हुई, उनका नशा फटने लगा। उन्होंने घबड़ाकर सेमली के हाथ में दो हजार रुपये रखते हुए कहा,

" जा,बेटे के पास जा, वह घर में अकेला डर रहा होगा।"

रुपये मुट्ठी में कसकर दबाये स्तब्ध सेमली बुदबुदाई,

" ...लेकिन साहब का इतना उधार...?"

पर प्रकट में धीमे से बस इतना ही कह पाई।,

"साहब, मैं आपका ऋण किसी दिन जरुर चुका दूँगी, उसके बिना मेरी मुक्ति नहीं होगी!"

कहकर वह तेजी से अँधेरे में विलीन हो गई।

पूनम कतरियार,
पटना

www.antrashabdshakti.com
संपादक : डॉ. प्रीति समकित सुराना
वारासिवनी (म.प्र.)

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
प्रकाशन एवं बहुद्देशीय संस्था

वेब अंक
शुक्रवार, 24 अप्रैल 2026

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का अंतरराष्ट्रीय मंच।

रोशनी की किरण

एक फोन काल और कृष्णा विला में शोक की लहर दौड़ गई कन्हैया जी नहीं रहे !!

अगले पंद्रह दिन घर मेहमानो की आवा जाही और अंतिम कार्यक्रमों में बीत गया फिर शुरु हुई व्यापार से लेकर घर तक बटवारे की उठा पटक। इस सब में अब तक घर की मालकिन रही यशोदा का तो जैसे अस्तित्व ही कहीं खो गया। बंद कमरे की चारपाई ऊपर चलता पंखा पत्थराई आँखे निस्तेज चेहरा सब कुछ बदल गया पति का यूँ अचानक चले जाना मानो जिंदगी से सारी रोशनी छीन कर किसी अंधेरी कोठरी में फेंक दिया हो किसी ने, घर पर चलती उथल-पुथल से बिल्कुल दूर अपने में सिमटी यशोदा शायद!! किसी के इंतजार में है जैसे घनघोर बरसात की काली बदली में धूप का एक टुकड़ा रोशनी की किरण ले कर आता है।

अम्मा अम्मा ये तो निर्मल है मैं आ गया हूँ माँ अब तुम्हें चिंता करने की कोई जरूरत नहीं ।

यशोदा ने निर्मल को भींच कर गले से लगा लिया भीतर का लावा पिघल कर निर्मल के काँधे भीगो गया।

आज हाल में सभी परिवार जन उपस्थित थे वकील साहब ने वसीयत पढ़ कर सुनाई सब कुछ यशोदा और निर्मल के नाम था .

दोनो भाई और उनके परिवार के होश उड़ गए ये क्या किया कन्हैया ने सब कुछ अपनी पत्नी और गोद लिए बेटे के नाम कर दिया और हमें खैरात की तरह घर के एक हिस्से में रहने और मामूली तनख्वाह ।

कितनी मुश्किल से इस निर्मल को हमने यहाँ से निकाले थे इसे कन्हैया की खबर किसने दे दी और ये कन्हैया भी बड़ा चालाक निकला जाते जाते हमारे पैरों से जमीन और सिर से छत छीन ली।

अब यशोदा के आँगन की बगिया खिलखिला रही महक रही है निर्मल का वापस आना गम के काले बादलों के बीच झाँकता हुआ धूप का टुकड़ा ही तो है जिसने उसके जीवन में रोशनी बिखेर उसे पुनः जीवंत कर दिया!!

स्मृति गुप्ता
जबलपुर

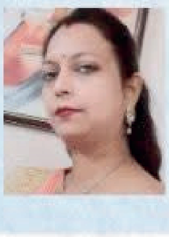

हाँ! इक नदी सी मैं

हाँ! इक नदी सी मैं

बेफिक्र सी..अल्हड़ सी
इक नदी की तरह हूँ मैं
दिशाहीन राहगीर जो
अक्सर...... नीर की दिशा से
भान करता है....
अपने गंतव्य की ड़गर
स्थायित्व को ना पाकर भी
स्थायी पगडंडी का निर्माण
करती
परिमित सी हूँ मैं

हाँ! इक नदी सी मैं

अंभुज की नील वर्णता को
प्रतिबिम्बित करती नभ से
सौम्यता को सहेज.......
अंतस की आकुलता को
तृप्त करती सी.........
दो पाटो में बँटकर भी
अविभाजित सी हूँ मैं

हाँ!इक नदी सी मैं

विकसित सी परिपाटी को
लहराती धरा पर.......
अपनी धाराओं के साथ
स्थापित करती हुई.....
असंख्य शंखो की तरह
हर मंदिर में सजती हूँ
पूँजनीय सी हूँ मैं.....

हाँ! इक नदी सी मैं.....

अवलोकन की ओर
बढ़ती सिंदूरमी सी
प्राकटय को तरसती
हिम सी अथाह ऊँचाई से
तनिक भी ना डरती..
निर्भीकता सी हूँ मैं

हाँ! इक नदी सी मैं.....

प्रारम्भ से अंत तक ही
अनन्त गहराइयों को
अविरल दृढ संकल्पित
पार करती...सम्भलती
उपमित यौवना की तरह
अपेक्षित सी हूँ मैं

हाँ! इक नदी सी मैं

अपेक्षा व्यास

ग़ज़ल

मिट्टी का जिस्म लेके मैं पानी के घर में हूँ
मंज़िल है मेरी मौत मैं हर पल सफ़र में हूँ

होना है मेरा क़त्ल ये मालूम है मुझे
लेकिन ख़बर नहीं कि मैं किसकी नज़र में हूँ

अब मेरा अपने दोस्त से रिश्ता अजीब है
हर पल वो मेरे डर में है मैं उसके डर में हूँ

मुझसे न पूछिये मेरे साहिल की दूरियाँ
मैं तो न जाने कबसे भँवर-दर-भँवर में हूँ

पीकर भी ज़हर-ए-ज़िंदगी ज़िंदा हूँ किस तरह
जादू ये कौनसा है मैं जिसके असर में हूँ

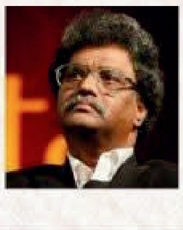

राजेश रेड्डी

"कवि, कविता और वो ..." — कवि शब्दशेखर 'उन्मुक्त'

कवि के लिए कविता जैसे चौथ का चाँद, और कवि जैसे चकोर — एकटक निहारता हुआ अपनी कविता को... कविता ही उसकी ओढ़नी, बिछावन, सब कुछ। कवि महोदय की रातें और पत्नी की नींद के बीच छिड़ जाती है छंदों की जंग। बस दिख जाए कविता — विचारों के उमड़ते-घुमड़ते बादलों के बीच कहीं एक झलक मिल जाए, एक पूँछ सी ही नजर आ जाए, फिर तो खींच के निकाल लेंगे बाहर!

कवि बेचारा, कविता का मारा — मारा-मारा फिरता है जंगल में। कविता जैसे बाघिन — दिखेगी तभी 'साइटिंग' होगी। 'दिखेगी तनिक गम्म तो खाओ!" कवि अपनी लेखनी की बंदूक ताने बस फिरता है — दिखे कहीं, तो करे शिकार। पूरी कविता नहीं तो पूँछ ही मिल जाए, उसी को ले जाकर दिखा देंगे! कविता की पूँछ पकड़ना भी बहुत ही 'कवियोचित' काम है, मित्र।

इधर कवि से अग्निसमक्ष सात फेरे लेकर आयी वो.. यानी कि कवि की भार्या — करवा चौथ के व्रत में कवि का दीदार करने को आतुर, और कवि टहल रहा है छत पर— अपने खोए हुए प्रेम की तलाश में। कवि का एकतरफा प्यार... कविता डरी-सहमी सी, सिकुड़ी सी, आंसू भरे डर के मारे...छुपी पडी है! उसे डर है, बाहर निकलते ही, 'मुआ' छेड़ेगा उसे।

ऐसे ही हैं कवि शब्दशेखर 'उन्मुक्त'। वो 'कवि' हैं— 'कवि' कहलाना पसंद करते हैं। खुद के द्वारा, खुद के लिए, स्वघोषित कवि— ऐसे छंदबद्ध, स्थितप्रज्ञ की तरह निर्लिप्त भाव से आत्ममुग्ध! न मंच देखें, न बिस्तर। सुबह उठते ही जब लोग कुल्ला करते हैं, ये कुल्ले से "काव्य-ध्वनि" निकालते हैं— "गर्गल कल-कल ध्वनि में करें कविता!"

प्रेमिका से मिलन से पहले लोग चेहरा सँवारे, ये कविता मिलन के लिए अपना गला सँवारें— चाहें उसे नेशनल हाईवे की तरह चिकना बनाना— ताकि कविता सरपट दौड़े इनके गले से!

नींद खुलते ही— या नींद में ही— कविता-पन इनका जागृत, सतर्क! न दिन देखें, न रात। न बात, न करामात।

बस जब जी चाहे— शुरू कर दें कविता का प्रलयंकारी प्रवाह!

कभी 3 बजे उठ जाएँ, तो पत्नी संग मनुहार करें—

"प्रियंवदा! श्रवण करो! यह मुक्तछंद तुम्हारे लिए ही जन्मा है।"

श्रीमती जी, जो स्वप्न में नींबू और प्याज की बढ़ती महंगाई, रसोई में खत्म होते जा रहे सिलेंडर की समस्या से जूझ रही होती हैं, चौंककर उठती हैं—

"कौन मर गया?"

"कोई नहीं... भाग्यवान! क्यों हमेशा मरने-मारने की बात करते हो... इसे श्रवण कर लो प्रिये... कविता मर जाएगी अगर तुरंत मैंने इसे नहीं सुनाया तो!"

दिन में वे पतीले खटखटातीं, और रात में कविताएँ चखतीं।

पूर्ण निशाकाल कविता-ज्वर चढ़ता।

बिस्तर में कविता की ऐसी दरिया बहती है कि असली दरिया भी जलन से सूख जाए!

रात में कभी भी कविता लग जाए— बहुमूत्र रोगी की तरह! उम्र भी हो गई है — अगर समय से बाथरूम न भागे तो बिस्तर गीला हो जाए।

समय से कविता न सुनाएँ तो... कविता लगने का प्रेशर भी ब्लैडर फुल होने जैसा ही है साहब!

'लूज़ मोशन' आने जैसा है यह भी...

कविता न सुनाएँ और अगर शब्दशेखर जी के सिर पर चढ़ जाए— तो मित्र! कहीं पगला-वगला न जाएँ— यह डर रहता है उनकी भार्या को।

शब्दशेखर की 'गोल्डन नाइट' भी 'पोएट्री नाइट' की तरह मनाई गयी— मोहल्ले में सब सो रहे थे, सिर्फ़ दो आत्माएँ जाग रही थीं— एक नवकवि और दूसरी नवविवाहिता।

"सुनो न," उन्होंने आँख मिचमिचाते हुए करवट बदली, "फिर वही... कविता?"

नवकवि महोदय पलंग पर पालथी मारे, हाथ में मोबाइल लिए, फेसबुक लाइव में व्यस्त थे।

बाल बिखरे हुए, आँखें चमकती हुई, और होंठों पर छंदमयी मुस्कान।

"श्रीमती जी," वे बोले, "देखिए तो सही, कितनी प्यारी लाइन निकली है—

'तेरी यादें बिछी थीं बिस्तर पर,

मैं लेटा तो कविता बह निकली...'"

"कृपा मत बहाइए, बिस्तर गीला हो जाएगा कविता से?" श्रीमती जी ने तकिए को पीछे सरकाते हुए संशय व्यक्त किया।

उपमा, कविताओं में बिल्कुल घरेलू, जमीनी स्तर की—

"तुम्हारी आँखें जैसे भिंडी के फूल पर गिरी ओस की एकांत बूँद!"

श्रीमती जी चिल्ला उठती हैं —

"अबे ओ कविराज! ये कविताओं में सब्ज़ियाँ न घुसाया करो!

सपना भी सब्ज़ी मंडी का आता है!

वैसे ही सब्ज़ियाँ इतनी महंगी हैं— इन्हें कविता में प्रयोग में लोगे तो खायेंगे क्या?"

एक रात तो हद ही हो गई—

पत्नी बोलीं, "अब बहुत हुआ! या तो तुम कविता लिखो, या तलाक़नामा!"

कवि जी बोले—

"क्या शानदार काव्य-अंतरा दिया है तुमने!

'तलाक़नामा'— बहुत खूब! इसे मैं अगली कविता का शीर्षक बना लूँगा!"

अब वे अपनी नई कविता में 'तलाक़नामा' के विविध प्रतीकात्मक प्रयोग की मशक्कत कर रहे हैं।

रचनाकार –डॉ मुकेश असीमित
गंगापुर सिटी राजस्थान

www.antrashabdshakti.com
संपादक : डॉ. प्रीति समकित सुराना
वारासिवनी (म.प्र.)

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
प्रकाशन एवं बहुद्देशीय संस्था

वेब अंक
रविवार, 26 अप्रैल 2026

मृत्यु का विधान

मृत्यु एक अटल सत्य है। यह विधि का एक कठोर विधान है। इसमें किसी भी जीव को छूट नहीं मिल सकती। इस चराचर जगत में जिस भी जीव का जन्म होता है, चाहे वह मनुष्य हो, पशु-पक्षी हो अथवा पेड़-पौधे हों, उनकी मृत्यु अवश्यम्भावी है। हर जीव अपने कृत कर्मों के अनुसार निश्चित समय के लिए इस संसार में आता है। मनुष्य स्वयं चाहे अथवा न चाहे परन्तु समयावधि पूर्ण होने के पश्चात उसे इस दुनिया से विदा लेनी ही पड़ती है। इसमें उसकी राय नहीं पूछी जाती और न ही उसकी कोई आवश्यकता नहीं होती।

उसके इहलोक के प्रस्थान के समय उसके निकटस्थ सम्बन्धी, परिवारी जन, बन्धु-बान्धव रोते-बिलखते रह जाते हैं और वह दूसरे लोक की यात्रा के लिए निपट अकेले ही प्रस्थान कर जाता है। अपने किसी भी प्रिय व्यक्ति को साथ लेकर जाने की अनुमति उसे ईश्वर की ओर से नहीं मिलती। इसीलिए कहते हैं कि मनुष्य इस संसार में अकेला आता है और अकेले ही यहाँ से विदा लेकर चला जाता है। वह अपनी सारी धन-दौलत और अपने महल-चौबारे इसी धरती पर छोड़कर खाली हाथ मुट्ठी बाँधे चला जाता है।

प्राण जब इस शरीर का त्याग कर देते हैं तब जीव की आँखें सदा के लिए मुँद जाती हैं। उस समय सभी भौतिक रिश्ते-नाते इसी संसार में छूट जाते हैं। कोई भी सम्बन्धी उसका अपना नहीं रह जाता और न ही वह भी किसी का नहीं रहता है। जिन परिवारी जनों के लिए वह अपना सारा जीवन स्याह-सफेद कार्य करता रहता है, वे सभी भाई-बन्धु केवल जीते जी की माया होते हैं और सिर्फ श्मशान तक ही वे उसका साथ निभाते हैं। उसके पश्चात की यात्रा जीव को स्वयं अकेले ही तय करनी होती है। वहाँ उसका कोई साथी नहीं होता।

मनुष्य का जब जन्म होता है तब उसका कोई नाम नहीं होता। जब वह इस संसार को छोड़कर जाता है तब उसके पास नाम तो होता है पर शरीर दंगा दे जाता है। अब हमें यहाँ यह भी विचार करना है कि क्या सिर्फ साँसे बन्द होने से ही कोई मुर्दा हो जाता है? जिसे अपने प्रियजन भी कुछ समय के लिए अपने घर रखने के लिए तैयार नहीं होते। बस शीघ्र ही उसे घर से निकाल देने के लिए उत्सुक रहते हैं। यही रह जाती है बस मनुष्य के जीवन की कहानी।

यह चिरन्तन सत्य है कि श्वासों की डोर थमने या टूट जाने से जीव मृत हो जाता है। उसे हम आम बोलचाल में शव या मुर्दा कहते हैं। फिर उस शव को उसी के ही परिवारी जन और बन्धु-बान्धव जुलूस बनाकर, श्मशान में ले जाकर अग्नि के सुपुर्द कर देते हैं। उसके जल जाने की थोड़ी-सी प्रतीक्षा किए बिना ही अपने-अपने घरों को लौट आते हैं। यदि अधिक समय तक उसे रखा जाए तो उस मृत शरीर से दुर्गन्ध आने लगती है जो बिमारी का कारण बन जाती है।

यह भी सत्य है कि जब मनुष्य से उसकी इन्सानियत निकल जाती है या फिर उसकी आँखों का पानी मर जाता है, उस समय भी वह मृतप्राय होता है। मनुष्य के लिए यही आवश्यक है कि सबसे पहले वह एक अच्छा इन्सान बने। एक मनुष्य में सबसे पहले मानवोचित गुणों का होना जरूरी है। उन गुणों के बिना इस मनुष्य को राक्षस या हैवान कहते हैं। ये दुष्ट प्रकृति के लोग मनुष्यता के नाम पर कलंक होते हैं, जो इन्सानियत की कब्र खोदते हैं। इन्हें न तो घर-परिवार में स्थान मिलता है और न ही देश-समाज में। नैतिक, धार्मिक और सामाजिक नियमों के विरुद्ध चलने वाले ये लोग देश, धर्म और समाज के शत्रु कहलाते हैं।

इसलिए ये लोग न्याय व्यवस्था के साथ आँखमिचौली खेलते हुए, अन्तत: कानून की बेड़ियों में जकड़कर सलाखों के पीछे जीवन व्यतीत करने के लिए विवश हो जाते है। किसी भी व्यक्ति के जीवित रहते हुए उसे मिलने वाली यह एक ऐसी मृत्यु होती है जो स्वयं उसके लिए और उसके अपनों के लिए बहुत कष्टकारी होती है। वह व्यक्ति तो दुष्कर्म कर लेता है परन्तु उसके बन्धु-बान्धवों को भी दारुण कष्ट भोगना पड़ता है और समाज में अपमानित होना पड़ता है।

वैसे तो जरा-सा कष्ट आने पर हम सब लोग मृत्यु को पुकारने लगते हैं पर वह क्षणिक रोष होता है। कभी-कभी लम्बी या असाध्य बीमारी की अवस्था में भी मनुष्य जीवन से हारकर मृत्यु का दामन थामना चाहता है परन्तु यह उसके वश में नहीं होता। ईश्वरीय इच्छा के समक्ष मनुष्य को नतमस्तक होना पड़ता है। जब वह पूर्वजन्म कृत कर्मों के अनुसार अपनी आयु भोग लेता है तभी उसे अपने जीवन से छुटकारा मिलता है, उसकी कामना करने के कारण पहले नहीं।

ईश्वर के प्राकृतिक न्याय के अनुसार मृत्यु होना एक स्वाभाविक-सी प्रक्रिया है परन्तु अपने पैरों पर स्वयं ही कुल्हाड़ी मारने वाली यह मृत्यु मनुष्य की स्वयं की बुलाई हुई होती है। मनुष्य को अपनी मृत्यु को इस प्रकार अनावश्यक रूप से कष्टदायक नहीं बनाना चाहिए। उसे सही रास्ते का चुनाव करके उस मार्ग पर चलकर अपने जीवन को सुखद बनाना चाहिए।

चन्द्र प्रभा सूद

फूल रहे कचनार

अविनाश ब्यौहार
जबलपुर मप्र

**धूप जलाने लगी देह को
अब है गर्मी आई।**

**मधुऋतु लौट
गई है वापस।
बरगद लगता
जैसे तापस।।**

**ऐसा लगता है मौसम ने
ले ली है अंगड़ाई।**

**फूल रहे कचनार
यहां है।
और बबूल बेकार
यहां है।।**

**पेटी में है बंद हो गई
स्वेटर, ऊन, सलाई।**

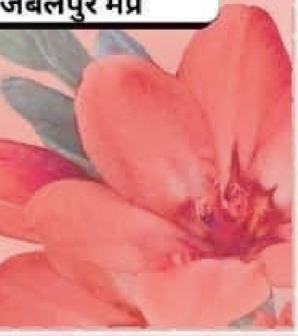

संघर्ष

जब जीवन में संघर्ष उतरता है,
तो मनुष्य प्रायः
मरना नहीं चुनता,
वह चुनता है; जीना !!!!

वह टूटे हुए भी आँसू पोंछकर
फिर उठ खड़ा होता है।
वह हार की राख से
छोटी-सी चिंगारी चुन लेता है !!!

वह जानता है;
जीवन आसान नहीं,
फिर भी जीवन ही चुनता है।
धरती का सबसे बड़ा चमत्कार है;
मनुष्य की यही जिजीविषा !!!!!

पर कितनी विडम्बना है !!!!
जब प्रकृति नहीं हराती,
परिस्थितियाँ नहीं हरातीं,
तब कभी-कभी ......
आसपास के ही कुछ "दुष्ट" लोग
मनुष्य को हराने निकल पड़ते हैं।
वे मृत्यु नहीं देते,
उससे भी कठिन दण्ड देने का प्रयास करते हैं ....
जीवन को मृत्यु जैसा बना देने का प्रयास !!!!

वे ताने देते हैं .....
जब व्यक्ति पहले ही टूटा हो !
वे उपहास करते हैं .....
जब हृदय पहले ही रक्तरंजित हो !
वे बाधाएँ रखते हैं ......
जब पाँव पहले ही काँप रहे हों!
वे जानते हैं .....
कि गिरते हुए मनुष्य को
एक धक्का पर्याप्त है ....
इसलिए वे धक्का देते हैं !!!!

वे जानते हैं ......
कि अँधेरे में दीपक
कम तेल पर जल रहा है,
इसलिए वे हवा बन जाते हैं !!!!

वे जानते हैं .....
कि संघर्षरत व्यक्ति
सहारे की प्रतीक्षा में है,
इसलिए वे पत्थर फेंकते हैं !!!!

ऐसे लोग
सामने से शत्रु नहीं दिखते,
अक्सर छिपे होते हैं ...
परिचित चेहरों में ही !!!!

कभी रिश्तों में .....
कभी पड़ोस में .....
कभी कार्यस्थल पर .....
कभी मित्रता के वस्त्र पहने .....
उनकी क्रूरता
खंजर की तरह प्रकट नहीं होती;
धीरे-धीरे रिसते विष जैसी होती है !!!

पर वे एक सत्य भूल जाते हैं ;
संघर्षरत मनुष्य
कमज़ोर अवश्य दिख सकता है,
पर शून्य नहीं होता !!!
जिसने बार-बार गिरकर उठना सीखा है,
उसे धक्का देना आसान नहीं रहता।

जो लोग ......
दूसरों का जीवन मृत्यु समान करना
चाहते हैं,
वे स्वयं भीतर से मृत होते हैं।
क्योंकि जो आत्मा जीवित है,
वह पीड़ा देखकर ....
मरहम बनती है,
घाव नहीं !!!

इसलिए यदि संघर्ष है
और आसपास ऐसे लोग भी हैं,
तो भावना आरोही कहती है ....
आपका जीते रहना ही उत्तर है !!!!
आपका सँभल जाना ही उत्तर है !!!!
आपका मुस्कुरा पाना ही उत्तर है !!!!
आपका आगे बढ़ जाना ही उत्तर है !!!!

डॉ. भावना चोपड़ा
आरोही

धूप का टुकड़ा

यामिनी ने नींद से बोझिल पलकों को उठा कर देखा। भारी पर्दों से छन छन कर धूप भीतर आ रही थी। यामिनी की नजर सामने दीवार की ओर गई, ग्यारह बज गए।

अचानक यामिनी चेतन हुई।उसके मन-मस्तिष्क पर ओस की बूंदों सी रात की घटनाएं तैर गईं।

जबसे विवाह हुआ है पति राज ने कभी सीधे मुंह बात नहीं की।

सास अपने अभिमान में चूर रहतीं हैं।

विवाह के पहले इन लोगों ने वादे किये थे बहू को बेटी बना कर रखेंगे।

पर विवाह बाद नौकरानी से ज्यादा नहीं समझा।

कल रात बहुत ज्यादा शराब पी कर राज घर आये थे।

आते ही सास ने उल्टी-सीधी चुगली लगा दी।

बस फिर क्या था राज ने अपनी सारी मर्दानगी उसकी देह तोड़ने में लगा दी और उसे इस कमरे में बंद कर दिया।

तभी दरवाजा खुला।घरेलू सहायक बीना खड़ी थी।

" दीदी आप पढ़ी लिखी हो। इतना अत्याचार मत सहो। जाओ पुलिस में रिपोर्ट करवाओ। अपने पिताजी को सब कुछ बताओ। ये नामुराद आपको जिंदा नहीं छोड़ेगे। इनकी निगाह आपके 'जीवन बीमा राशी' पर है। वे कैसे भी दुर्घटना दिखा कर आपको मार डालेंगे।जाओ दीदी जल्दी जाओ। जब तक आपकी सास भाई के यहां से आये, आप भाग जाओ। पीछे के दरवाजे से जाना"।

और यामिनी ने जल्दी जल्दी सारे जरूरी पेपर लिए और दौड़ लगा दी।

पुलिस थाने में महिला पुलिस इंस्पेक्टर ने उसकी बहुत मदद की।

तलाक होने के बाद यामिनी ने अपना कोचिंग सेंटर खोला।

उसके पापा ने कुछ रकम एक 'एफ डी' में उसके नाम कर दी थी। जो विवाह के समय अपने पास ही रखी थी। क्योंकि वे समझ गए थे कि हाथी के दांत दिखाने के अलग, खाने के अलग हैं।

वो पैसा यामिनी के आत्मसम्मान लौटाने में सहायक बना।

तभी बीना आई " दीदी चाय पियेंगी।"

"हां बना ला"बोल कर यामिनी मुस्कुराने लगी।

बीना ही तो थी वो "धूप का टुकड़ा" जिसने उसके अंधेरे जीवन में उजाला भर दिया

बीना आज भी उसके साथ है। और अपनी धवल उज्जवल हंसी से उसके जीवन में आशा भरती रहती है।

नमिता दुबे मिशा

छोटे छोटे निर्णय

कॉलेज की कैंटीन में हर दिन की तरह हल्की-फुल्की चहल-पहल थी। मैं कैंटीन में पहुंची ही थी कि वाणी की मेज़ की पर रखे छोटे-छोटे डिब्बों का रेला देखकर चौंक गई।

“अरे वाणी... आज तो बहुत सारे व्यंजन बनाए हैं तूने! इतने सारे डिब्बे? क्या क्या बना डाला है?” मैंने हँसते हुए कहा।

वाणी ने धीरे से मुस्कराकर कहा—

“अरे नहीं मैडम, ये सब तो... कल, परसों की बची सब्जियाँ हैं। सारी सब्जियाँ मैं कॉलेज ले आई। घर में पतिदेव फ्रिज में, किचन में झांकते रहते हैं और बोलते रहते हैं— इतना फालतू क्यों बनाती हो जो बचे... बस, उसी से बचने के लिए ले आई हूँ।”

सुनकर मैं हतप्रभ रह गई। वाणी इतनी सौम्य, समझदार अध्यापिका है हमारे यहां। उसके चेहरे पर हल्की सी शर्म, ग्लानि, समझौते की मिली-जुली परछाईं और उससे भारी कोई दबी हुई थकान थी। वाणी ने हँसी का हल्का आवरण ओढ़कर अपने दर्द को छिपाने की कोशिश की— “मैडम, कभी-कभी तो... बची हुई सब्जियाँ दो-दो पॉलिथीन में लपेटकर बाहर वाली सड़क के कूड़ेदान में चुपके से फेंक आती हूँ। घर में शांति रहे... इसी कोशिश में दिन-रात लगी रहती हूँ।”

मैं सन्न रह गई। इतनी शांत, विनम्र और संवेदनशील स्त्री— और अपने ही घर में इतना संकोच?

उस दिन कैंटीन में हमने वे सब्ज़ियाँ मिलकर खाईं। हँसी गूँजी और खाने की खुशबू के साथ एक नया विचार भी फैला।

मैंने पास बैठते हुए कहा, “वाणी, शांति, जो डर से खरीदी जाए, वो शांति नहीं होती।"

वाणी ने कुछ देर तक मेरी आँखों में झाँका और तुरंत ही आत्मविश्वास से भर एक निश्चयात्मक भाव से मुस्कुराई।

वाणी ने निश्चय किया— अब वह बचा खाना फेंकेगी नहीं, पास की झुग्गी के बच्चों तक पहुँचाएगी।

घर में बोलेगी— “कम बनाना बुरा, पर थोड़ा बचा खाना बुरा नहीं।”

कभी-कभी छोटे छोटे निर्णय, बड़ी चुप्पियों को तोड़ देते हैं— स्त्री को अपने ही घर में थोड़ी-सी जगह लौटा देते हैं।

नील मणि,
मेरठ (उत्तरप्रदेश)

"चाँद की तन्हाई"

तारों से आच्छादित
अनंत आकाश में
अपनी धवल शून्यता को बचाए रखने का
यह उसका गरिमामयी प्रयास है,
चाँद तन्हाई में अवश्य है
मगर उपेक्षित कदापि नहीं।

तारे,
जो समूह में होने के बावजूद
केवल टिमटिमाते हैं,
प्रकाश तो नहीं लुटाते
सांत्वना-बोध जरूर कराते हैं,
वे नहीं जानते
उस अकेलेपन का भार
जिसे लेकर चाँद
हर रात अंधेरे के आगोश में
दुबकते हुए निकलता है।

भीड़ का हिस्सा होना
बहुत सरल है,
मगर वहाँ
अपनी पहचान
अपना उद्देश्य बरकरार रखना
उसके लिये
एक बहुत बड़ा चेलेंज है।

तारामण्डल में
वह अकेला चाँद,
अपनी घटती-बढ़ती कलाओं के कारण
नितप्रति
अपने अस्तित्व का अहसास दिलाने का
आत्मयुद्ध लड़ता है।

चाँद का सफर गवाह है कि
चमकने के लिए
किसी का साथ नहीं,
बल्कि अपने दिल में
थोड़ी सी आग समेटना
और बहुत सारा धैर्य धरना
बहुत जरूरी है।

माना कि "सफर तन्हा है चाँद का
तारों की भीड़ में,"
मगर
नहीं भूलना चाहिए कि
भीड़ का कोई अनुशासन नहीं होता,
भीड़ सिर्फ शोर मचाती है,
पर जो तन्हा है
वह अपने हालात को
संगीत में बदल सकता है।

प्रदीप कुमार
अरोरा, पुणे

मेरी छोटी सी बगिया में

मेरी छोटी सी बगिया में
बड़ी-बड़ी बातें होती हैं

एक नया बुलबुल का जोड़ा
सुबह-सुबह ही आ जाता है
हरसिंगार के पत्तों में छिप
चहक-चहक कर कुछ गाता है

चंचल पंछी की थिरकन में
मीठी सी घातें होती हैं

शरद -चाँदनी रातों में जब
रजनीगन्धा मुस्काती है
फूलों का झूमर पहने जब
मधुमालती शर्माती है

बहुत सुनहरे दिन होते हैं
चांदी सी रातें होती हैं

आज फ़ाख्ता ने झुरमुट में
अपना डेरा जमा लिया है
कुछ तिनके कुछ पत्ते चुन कर
नया बसेरा बना लिया है

कुछ दिन में परिवार बसेगा
सुख की बरसातें होती हैं

अगर कभी नन्हे बच्चों पर
नजर बाज की पड़ जाती है
चूं-चूं शोर मचा डाली पर
कुछ गौरैयाँ अड़ जाती हैं

नन्ही चोंचों अरु पंजों से
घातें प्रति-घातें होती हैं

तरह-तरह के फूलों के संग
तरह-तरह की चिड़ियाँ रहतीं
सुबह-शाम नित अपने स्वर में
हमसे जाने क्या -क्या कहतीं

संघर्षों में जीवन का सुख
पंखों पर नभ को ढोती हैं

डॉ मधु प्रधान
कानपुर

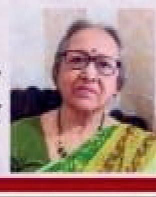

समय

जब चलें बेख़ौफ़ आंधियां
पकड़कर रखो अपनी जमीन
और खड़े रहो मजबूती से।
वरना उड़ जाओगे।
बचा सको, तो बचा लो
अपनी गैरत, अपना ईमान।
चारों ओर घूम रहे हैं
झूठ के सौदागर।

अनैतिकता परवान पर है
नैतिकता धूल चाट रही है।
दिलो-दिमाग पर हावी है हैवानियत
और दम घुट रहा है इंसानियत का।
खो गयी है मर्यादा, ज़ुबान और शब्दों की
आम-ओ-ख़ास हो चली है, बदतमीजी।

खत्म हो चुकी है राजनीति से 'नीति'
बचा है सिर्फ 'राज', जो चल रहा है।
कलंकित, महिमामंडित हो रहे हैं
और दुर्भिक्ष है, चरित्र का।
खूब उड़ाओ आसमान में गुब्बारे
और दौड़ते रहो, टूटती पतंगों की ओर!

विजयानंद विजय
नयी दिल्ली

ग़ज़ल

जब कि वो प्यार का समंदर है।
फिर क्यों हाथों में उस के खंज़र है।।

याद शिद्दत से माँ की आती है।
जब भी लगती मुझे जो ठोकर है।।

उस के साये से भी है, डर लगता।
ज़ख़्म देता जो मुझ को अक़्सर है।।

वो मिला न मुझे जिसे चाहा।
जो मिला वो मिरा मुकद्दर है।।

मुस्कुराते क्यों लोग चिल्लाते।
अब भी कैसा ये डर का मंज़र है।।

दिल दुखाया है जब कभी माँ का।
ठोकरें खाई उसने दर-दर है ।।

नफ़रतों में जो प्यार ही बाँटें ।
ये हुनर तो नलिन के अंदर है ।।

नलिन
खोईवाल, इंदौर

"मेरा घर"

है मेरा छोटा घर
उस छोटे घर में
मेरे अलावा
और भी कई रहते है,
चींटी, मच्छर, मकड़ी और छिपकलियां
दिख जाते है गाहे-बगाहे

मुझे नहीं लगता अच्छा
उनका मेरे घर में रहना,
मौका मिलते ही
उन्हें मैं मार देता हूँ
और
हो जाता हूँ खुश,

अब इस घर में
मेरे अलावा
और
कोई नहीं रहता,
पर असल में
अंदर खुद के नही देख पाता,

जबकि
रहते है मेरे घर में,
मेरे साथ
मेरा अहम, मेरा अभिमान
और
मेरा स्वार्थ, बड़प्पन आदि,

अफसोस जिन्हें
शायद
मैं कभी मार नहीं पाता।

अटल कश्यप
भोपाल, मध्यप्रदेश

मासूमियत का संसार

नफ़रतों के शहर में प्यार ढूँढता हूँ मैं।
सुकून की कोई दरकार ढूँढता हूँ मैं।

जहाँ झूठ बिके, वहाँ सच कमाने चला,
इस भीड़ में इक किरदार ढूँढता हूँ मैं।

हर चेहरा नक़ाब में है कुछ न कुछ,
मासूमियत का वह संसार ढूँढता हूँ मैं।

लोग मंदिर, मस्ज़िद में झगड़ते रहे,
दिल में खुदा का दीदार ढूँढता हूँ मैं।

सच तो सच है 'मनीष' सो सही,
इनकार में भी इकरार ढूँढता हूँ मैं।

मनीष कुमार पाटीदार
महेश्वर (खरगोन) म. प्र .

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का अंतरराष्ट्रीय मंच।

निर्माण के दोहे

लगा मुखौटे लोग अब,खड़े झूठ के साथ
सत्य के संग आजकल,यों होता है घात
*****

लेकर नाम विकास का,खेलें सारे खेल
सियार भेड़िए साथ में,देख गजब का मेल
****

रही बदलती है सदा,यार वक्त की चाल
जो वक्त के साथ चला,होता वही निहाल
****

सबके अपने भाव हैं,सबकी अपनी पीर
राधा मीरा देख लो,या ग़ालिब या मीर
*****

मिलकर सभी निचोड़ते,असफर और वजीर
जनता बस यह सोचती,यह उनकी तकदीर
*****

आजकल का प्यार हुआ,छुई मुई का फूल
तितली शाम जहाँ रही,सुबह गई वो भूल
*****

रोटी का वादा किया,लूट लिए सब वोट
करी सत्ता में आते,रोटी पर ही चोट
*****

उल्लू बैठे हर शाख,खूब मचाते शोर
हंस हुए अब मौन हैं,ये कैसा है दौर।।
******

आपदा में अवसर की,जो करता है बात
आँख बंद कर बोलिए,वो नेता की जात
****

घड़ी बंधी है हाथ पर,नहीं समय का ध्यान
कहते फिरते सब जगह,हम तो हैं विद्वान
*****

खूंटी पर टँगे हुए हैं,कैलेंडर सी जात
पूछेगा कल कौन रे,फिरें दिखाते जात
****

हर शाख पर बैठा है,उल्लू ही चहुँ ओर
सत्य यहाँ छिपता फिरे,झूठ मचाए शोर
*****

अजब गजब के शौक हैं,अब मानव के यार
दफन किया है प्यार को,नफरत कारोबार
*****

भरता पेट हरेक का,रहता खुद हलकान
गुरबत में रहता सदा,उसका नाम किसान
******

स्वार्थ हित होकर ही,जाते मंदिर लोग
घर में बैठे देव को,नहीं लगाते भोग

कृष्ण कुमार निर्माण
करनाल, हरियाणा।

इंसां नहीं होती

मैं अगर इंसां नहीं होती,
तो क़िताब होती।

तुम्हारे तकिये के नीचे हिफाज़त से रखी हुई/
या सीने से लग के सोई हुई/
कुछ कॉटेशन्स को अंडरलाइन करी हुई,
कोई पसन्दीदा क़िताब।
तुम पढ़ते मुझे अनगिनत बार
हर बार तुम्हें लगती नई सी।
मैं घुल रही होती तुम्हारी सोच में
तुम्हें उड़ने देने वाली क़िताब बन कर।

मैं अगर क़िताब नहीं होती,
तो तुम्हारा चश्मा होती।

जिसके बिना तुम्हारी सुबह न होती।
मुझे आँखों में सजा के तुम्हें
मिलता हुनर सब स्पष्ट देखने का।
मेरे दूर होते हीं, बग़ावत कर देती
तुम्हारी आँखें।
क़िताब को पढ़ने के लिए भी
तुम्हें मेरी जरूरत होती।
लेकिन सोते वक़्त तुमसे दूर पड़ी मैं
क्या कर रही होती?

नहीं, मुझे नहीं होना कोई क़िताब,
मुझे नहीं होना कोई चश्मा,
मुझे बन जाने दो ऐसा ख़्वाब
जो बने जुनून दिन के उजाले में,
और दे सुकूं तुम्हें रातों की तन्हाइयों में!

मैं अगर इंसां नहीं होती,
तो जरूर तुम्हारा ख्वाब होती।

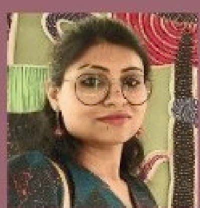

वर्षा श्रीवास्तव

बारूद से संवाद तक

जब युद्ध की ज्वाला धरती पर उतरती है,
आकाश धुएँ से भर जाता है,
और मनुष्य की आँखों में
भय का धुंधलापन जमने लगता है।

मिसाइलों की गर्जना में दब जाती है
बच्चों की खिलखिलाहट
खेतों की हरियाली
बारूद की राख में ढक जाती है।

कस्बों की सड़कें
पदचाप नहीं, सिसकियों से गूँजती हैं।
और इतिहास के पन्नों में
मानवता का चेहरा उदास दिखता है।

युद्ध से केवल सीमाएं नहीं बदलती
वह घरों की चौखटों से
सपनों का उजाला भी छीन लेता है।
एक माँ की आँखों में
प्रतीक्षा का अंतहीन सागर भर देता है।

विजय के शंखनाद में भी
कितनी हार छिपी रहती है—
यह केवल वही जानता
जिसने अपनों को खोया हो।

विभीषिका के उस अँधेरे में
मानव का विवेक कहीं सिसकता है,
मानो पूछ रहा हो—
क्या यही प्रगति का पथ है?

पर हर धधकती राख के नीचे
एक नन्ही चिंगारी जिंदा रहती है—
आशा की, करुणा की,
मनुष्यता की।

वही चिंगारी
एक दिन शांति का दीप बनती है,
जब हथियारों से थके हाथ
परस्पर हाथ बढ़ाते हैं तब
दिलों में यह विश्वास जन्म लेता है
कि धरती किसी एक की नहीं,
सभी की साझी विरासत है।

तब हवा में बारूद की दुर्गंध नहीं,
संवाद की सुगंध घुलती है,
और मानवता फिर से जीतती है—
युद्ध से नहीं,
शांति से ही संसार सुंदर बनता है।

दिलीप आचार्य सोमेश्वर
बांसवाड़ा, राज.